विचार विचित्र

अर्थात्

मर्म की बातें

लेखक :-

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक :-

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक

मूल्य : 6-00

विचार विचित्र

अर्थात्

मर्म की बातें

लेखक :-

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज
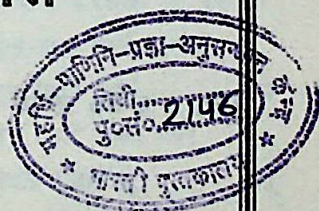
प्रकाशक :-

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक

मूल्य : 6-00

प्रकाशक :—
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर, रोहतक

मूल्य : ६-०० रुपए

मुद्रक :—
सुवीरा मुद्रणालय
सुखपुरा बाईपास, रोहतक
दूरभाष : ५६८३३

ओ३म्

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१.	प्रार्थना	१
२.	माता पिता का सम्बन्ध	४
३.	मार्गशीर्ष	५
४.	शरीर के मल कर से, मन के कर्म से	६
५.	गैस लैम्प (पैट्रोल, वायु)	७
६.	हांडी की दाल की शिक्षा	७
७.	याचना (मांग)	८
८.	वायु दूत	६
६.	भूल (सुन्दर और कीमती महल)	१०
१०.	उपासना	१२
११.	किस समान ? पुत्र, माता पिता, गुरु	१३
१२.	मग्घर महात्म (मार्गशीर्ष माहात्म्य)	१४
१३.	मिलाप में भाव का अभाव	१५
१४.	अतिचंचल घोड़ा	१६
१५.	मन को थका—थका परमात्मा की अमृत गोद में सुलादो	१८
१६.	यज्ञों में विपरीत संकल्प वाला क्यों नहीं आना चाहिए ?	१८
१७.	वायु गुरु	१६
१८.	वायु गुरु	२१
१६.	पांच प्राण (शरीर के गुरु एक–एक कार्य, मन के गुरु पांचों कार्य.	२२
२०.	तैनूं अपने भक्त प्यारे, भक्तां प्यारा तूं।	२५
२१.	यजमान (इष प्राप्ति का अधिकारी	२७
२२.	कर्म के साधन का रुख (पशु मनुष्य)	२७
२३.	सच्चा सुख संतोष (मन का श्रेष्ठतम कर्म व तृप्ति का साधन)	२६
२४.	ज्योति जगने की युक्ति	३०
२५.	जीवित कर्म (सामवेद, सोमरस ओ३म् सोम)	३१
२६.	इन्द्र का निवास स्थान	३३

विचार-विचित्र

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
२७.	मन (सूक्ष्म से सूक्ष्म यंत्र)	३४
२८.	मन का दीपक (तेल बत्ती, नोंक) (प्रभु प्रकाश कैसे हो)	३५
२९.	मन को पड़ौसी इन्द्रियां जीवात्मा का परमात्मा परंतु जीवात्मा का मन से प्यार	३६
३०.	विशाल हृदय	३९
३१.	भगवत भेंट	४१
३२.	कथा का दृश्य	४२
३३.	बंधन रक्षा का साधन	४३
३४.	प्रभु के संग लाग (बोझ जो स्वामी स्वयं उठाता है)	४४
३५.	कोई किसी को क्यों उठाए रखता है ?	४६
३६.	करोड़पति मजदूर	४६
३७.	ताजा जलेबी (स्वाद कहां ? किसी का दान में, किसी का दमन में)	४७
३८.	अग्नि संग प्रकाशित हो (ऊंचा उठ, एक से अनेक हो जाय)	४८
३९.	उपदेश (पुस्तक से, अन्तःकरण से छिड़काव और वर्षा)	४९
४०.	जीवन निर्वाह	५०
४१.	महाभारत संग्राम (एक माता पांच पिता)	५१
४२.	मख (यज्ञ से मोक्ष)	५३
४३.	मनोविकार शुद्धि की विधि दोषपूर्ति के लिए संग्राम	५४
४४.	माता पिता, माता पिता के गुण धारण कर, मरण से तरण, जीवन से मोक्ष	५५
४५.	जल योग (जल–जन्म जीवानाधार) (जल जगदाधार) (प्राण शरीराधार) (जल प्राण आधार) (जल वायु आधार)	५५
४६.	जल ज्योति	५७
४७.	जल सर्व होम औषधि	५७
४८.	सुमित्र	५९
४९.	अद्‌भुत औषधालय	६०
५०.	मन की शुद्धताई	६१
५१.	थकान का कारण	६२
५२.	पशु बेज़वान, मनुष्य बाजवान (फरियादी और फरियाद रख)	६४

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
५३.	मनुष्य और पशु की मूत्रेन्द्रिय का भेद	६५
५४.	भक्त का आहार	६७
५५.	भोजन से भजन कब ?	६८
५६.	करो (ज्ञान ऊपर और प्रकट होकर) (त्याग नीचे और गुप्त होकर)	७०
५७.	जप अवश्यमेव फल लावेगा	७१
५८.	बुझारतें (पहेलियां)	७२
५९.	मन की उन्नति का साधन	७३
६०.	सच्चा स्वाद (संसार छिलका प्रभु अमृतरस)	७६
६१.	प्रभुप्राप्ति हर अवस्था में (पर विशाल और हर्षित हृदय चाहिये)	७७
६२.	याचक को संतुष्ट करो परन्तु कैसे ?	७८
६३.	मन और आत्मा का आनन्द (प्राकृतिक वस्तु में मन को आनन्द) (नाम जपन और भजन से आत्मा को आनन्द)	८३
६४.	गृहस्थी और विरक्ति के आनन्द में भेद	८४
६५.	जहां और जहान्	८६
६६.	विरक्त का मकान (मुकीम वासी—अन्दर ताला बाहिर)	८८
६७.	नामकरण संस्कार तिथि, जन्म	८८
६८.	सेवा वाणी द्वारा	९०
६९.	जीवन वाणी द्वारा	९०
७०.	कुवासना भयानक रोग है	९१
७१.	जितना उत्तम जीवन होगा उतनी अवनति का भय	९२
७२.	तीन लोक और उनका सहारा	९३
७३.	सम्बन्ध का कारण त्याग और ग्रहण	९४
७४.	मैं मैला तुम उज्ज्वलकर्ता	९६
७५.	तीन प्रकार के नेत्र (रजोगुणी, तमोगुणी, सतोगुणी)	८७
७६.	परीक्षा	९७
७७.	आसन की आवश्यकता	९८

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
७८.	अवगुण हारा मैं कि पशु	९९
७९.	भक्त परोपकारी बन, अथवा कमा के खा, और भक्ति कर	१०१
८०.	वाचिक जाप, मानसिक जाप में बहु अन्तर	१०२
८१.	रात्रि रक्षा	१०३
८२.	मनुष्य की आंख ज्ञान–इन्द्रियों को क्यों नहीं देख सकती। क्यों पशु केवल पाओं को देख सकता है	१०४
८३.	दो दो अंगों का रहस्य	१०५
८४.	पांच की प्राप्ति (कैसे हो किसे हो ?)	१०६
८५.	किरण के सात रंग (सात प्रकार की अग्नि, सात प्रकार का यज्ञ)	११०
८६.	अवगुण कैसे जावें ?	१११
८७.	वसन्त पंचमी (वसु–पंचम स्वर, पंचम तत्त्व)	११२
८८.	सेवक, सेवक का भेद	११३
८९.	कर्म, ज्ञान, उपासना का फल पिण्ड की अबज़र्वेटरी खुर्दबीन दूरबीन	११५
९०.	अदीनता और आयु का गुर	११६
९१.	वे रंज गज मुयस्सर में शुद	११७
९२.	ओंकार तेरा नाम (भजन)	११८
९३.	प्रभु प्रेम (भजन)	११८

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥
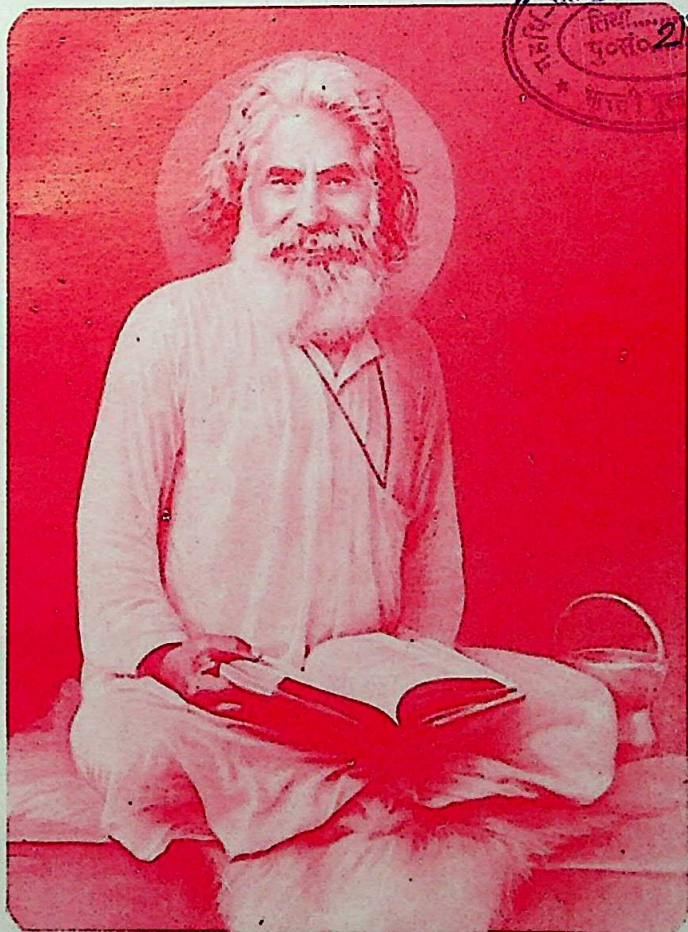
श्री पूज्य स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज

ओ३म्

प्रार्थना

*सपुरदम बतो खुदा खेशरा,
तू दानी हिसादे कमो बेश रा।

(अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में)

हे भगवान् ! महिमा महान्, मैं आज क्या शिकायत करूं ! तेरा तो स्वभाव ही है कि तू कभी–कभी व्रत रखा दिया करता है। पर प्रभु ! वह व्रत ही कैसा जिसमें भूख बनी रहे। मुझे तो यदि तू रोज़ा (व्रत) भी कराए तो मैं अपने आप को तृप्त अनुभव करूं। नहीं, नहीं, प्रभो ! कहीं ऐसा भी न कर देना कि मैं अपने आपको अभिमान से तृप्त मान लूँ। उलटा लेने के देने पड़ जाएं। यदि तू मुझे नया भोजन नहीं देता तो मुझे जुगाली ही करा दिया कर। प्रातःकाल जागते ही मेरा पूर्ण विचार था कि मेरा

---

*अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
उत्थान पतन अब मेरा है भगवान् तुम्हारे हाथों में।।

आज का दिन अति उत्तम व्यतीत होगा। मैंने प्रातः स्वप्न में तेरे प्यारे तपीश्वरों और ब्रह्मज्ञानी महात्माओं के दर्शन किए। पूजनीय स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज और पूजनीय स्वामी श्री गंगागिरी जी महाराज को भी सुना। जब--जब मैंने कभी स्वप्न में स्वामी जी महाराज के दर्शन किए तब--तब मेरा दिन ऐसा उत्तम व्यतीत होता रहा कि मेरी प्रसन्नता की सीमा न रहती थी। आज कोई विशेषता नहीं रही और सबसे बड़ी आश्चर्यजनक भूल यह देखी कि मैंने जब स्वामी जी महाराज के दर्शन किये तो केवल हाथ जोड़ नमस्ते ही कर दी। यद्यपि अपनी आयु में जब से स्वामी जी महाराज से मैं परिचित हूं कभी ऐसा नहीं किया। मैं स्वामी जी के चरणों में, जितनी बार आऊं जाऊं, उनके प्रति मस्तक झुकाने में मुझे असीम हर्ष अनुभव होता है तथा मेरी श्रद्धा उनमें इतनी है कि मेरा रोम रोम साक्षी है। परन्तु मेरी वाणी से जब जब उनकी ध्वनि नहीं निकलती मैं अपने आपको स्वादरहित पाता हूं। जब मेरे भाषण में उन्हीं की वाणी होती है तो बड़ा रस आता है। स्वामी जी महाराज ने यह भी फरमाया कि हम तेरह दिन रहेंगे। इसमें भी मैं चकित होगया। अन्यथा प्रसन्नता की सीमा न रहती कि अब इतने दिनों में बहुत कुछ प्रसाद मिलेगा। प्रभो ! कृपा करो, एक तो दिया न ! दूसरे अवज्ञा मुझसे कितनी कराई। मैं तो जागृत में भी

तेरा आश्रित हूं तो फिर स्वप्न में मेरी अपनी क्या शक्ति है। दीनबन्धु प्रभो ! अपने आश्रित की आप लाज न रखोगे तो और कौन रखेगा ? प्रभो कृपा करो ! दया करो ! मेरे पास रखा ही क्या है ? तेरी पवित्र वेद–वाणी को मैं लोगों में कैसे प्रकट कर सकता हूं। जब तेरे प्रसाद से मैं वञ्चित रहूं तो तू ताजा देता है तो मैं उसे अपने भाइयों की भेंट धर सकता हूं। प्रभो ! अपने नाम की लाज रखो ! ऐसी पवित्र वेदी के ऊपर यज्ञ, महायज्ञ ब्रह्मपारायण यज्ञ की वेदी के ऊपर जनता से शर्मसार न होना पड़े। कृपा करो––ओ हो––आश्रित ! फिर भूल कर रहे हो, भूल कर रहे हो। तुम ने शर्मसारी मानी तो अभिमान और क्या होगा ? यही अभिमान है। आश्रित को क्या ? जैसा प्रभु चाहे, कराए। आश्रित तो यन्त्र होते हैं। धन्य प्रभो ! धन्य ! तेरी इच्छा पूर्ण हो।

ओ३म्

माता पिता का सम्बन्ध

स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।।१।। ऋ० १।१।६

(१) जिसने भी (रिश्ते) सम्बन्ध संसार में हैं वे सब किसी न किसी सम्बन्ध से हैं परन्तु माता पिता का रिश्ता बिना किसी सम्बन्ध के है।

(२) सब रिश्ते जन्म के पश्चात् पैदा होते हैं परन्तु माता पिता का जन्म से पहले है (अर्थात् संसार में प्रकट होने से पहले)।

(३) तमाम रिश्ते दृष्ट रूप से हैं और माता पिता का रिश्ता अदृष्ट बनता है, गुप्त होता है।

(४) जितने रिश्ते किसी आश्रय से होते हैं वे सब व्यर्थ हैं और जितने रिश्ते बिना किसी आश्रय के स्वतः सिद्ध होते हैं, वे लाभदायक होते हैं पर उनमें भी सबसे अधिक लाभप्रद अथवा अटूट सम्बन्ध वह है जो अदृष्ट रूप से होता है। जिसे मनुष्य ने स्वयं नहीं बनाया, अपनी इच्छा से नहीं बनाया।

प्रातः ५-२५

१. मार्गशीर्ष

जितना मल मनुष्य शरीर त्याग करता है उतना अधिक ग्रहण कर सकता है। ऐसे ही मन जितना दोष, मल का त्याग करेगा, उतना अधिक गुण धारण कर सकेगा।

२. परमात्मा रूपी सूर्य के समीप रह

अब मार्गशीर्ष लग गया है, संसार के सब प्राणियों को स्वभावतः सूर्य प्यारा लग रहा है। प्रकृति अपने प्रभाव और प्रेरणा से सभी लोगों के मस्तिष्क में यह बात भर रही है कि उनके जीवन का कल्याण उनके शरीर की पुष्टि सूर्य के सम्मुख और उसकी धूप में रहने से है। निर्धनों और वृद्धों, कमजोरों की जान प्राण सूर्य है। आध्यात्मिक रीति से भी इस समय मनुष्य के आत्मा को परमात्मा रूपी सूर्य के समीप उस के सम्मुख जाने में ही कल्याण है।

३. बर्फ समान जम जा

इस समय में जल भी जमकर बर्फ हो जाता है, जो सदा बहनेवाली वस्तु है। मनुष्य का मन सदा बहता चलता रहता है, उसे भी समाधिस्थ होकर जम जाना चाहिए।

(तिथि २०—११—३५ बुधवार ३—५० प्रातः)

शरीर के मल कर से ❋ मन के कर्म से

(१) शरीर के जितने भी मल हैं, ज्ञान—इन्द्रियों में वे सारे के सारे कर (हाथ) के द्वारा हाथ की सहायता से साफ शुद्ध होते हैं ऐसे ही मनुष्य के मन के मल (पाप) भी 'कर' कर्म के द्वारा पवित्र होते हैं।

(२) शरीर के अन्दर जो दर्द हो जाता है जिसे डाक्टर या दूसरा नहीं देख सकता उसे भी मनुष्य हाथ के द्वारा छूकर दिखा सकता है। ऐसे ही न दीख सकने वाली वस्तु का ज्ञान भी कर (कर्म, आचरण) से मनुष्य देख सकता है और दिखा सकता है। बिना कर्म आचरण के कभी गुप्त वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता।

३. मकान और तरखान

मकान जिस पर लाखों हजारों रुपए लगाए गए, कारीगर ने स्वयम् जहां—जहां सुराख रखा। खिड़की या जाला, मोरी या परनाला, रोशनदान या अलमारी, पिंजरा, वे सब बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं। परन्तु जब रहनेवाला (किरायेदार) मकान में कोई सुराख कर दे तो सुन्दरतम मकान भद्दा दिखाई देता है। ऐसे ही मनुष्य शरीर के जीवन में।

४ बजे प्रातः

पैट्रोल **गैस लैम्प** वायु

गैस लैम्प में पैट्रोल डाल दिया, तीली से जगा भी लिया। पर उसका प्रकाश तब बढ़ता है जब उसमें वायु भरी जाये। जितनी वायु अधिक भरी जावेगी, उतना प्रकाश अधिक होगा। ऐसे ही शरीर में रक्तरूपी पैट्रोल है परन्तु प्राण जितना अधिक भरा जाएगा, उतना शरीर अधिक काम करेगा, और चमकेगा। जिस मन में प्रभु ज्योति की तीली लग गई है और भक्ति रस रूपी पैट्रोल मौजूद है वहां उपकाररूपी वायु जितनी अधिक भरेगा, उतना संसार में वह अधिक प्रसिद्ध होगा।

५ बजे

हांडी की दाल की शिक्षा

हांडी के पानी में जब दाल डाली जाती है जब तक वह अनेक रूप में रहती है, शांत रहती है। परन्तु जब उसके संग से उसमें थोड़ा परिवर्तन आता है तो जोश से ऊपर नीचे होती, बार–बार बड़–बड़ करती है। जितना उसमें दूसरों के लिए लाभदायक बनने का गुण आता है तथा जब पक जाती है तब शांत हो जाती है।

ओ३म्

तिथि २, ११, ३५ गुरुवार समय ३–४० प्रातः

मांग (याचना)

हे भगवान् ! महिमा महान् ! मैं बहुत बार ऐसा भी विचार करता हूं कि तुझ से कुछ न मांगूं, पर फिर भी रहा नहीं जाता। कहते हैं बिना मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न भीख, पर मैं कुछ ऐसा निर्बलसा हूं कि कई–कई दिन तो यही कहता हूं, "प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो। तेरी इच्छा पूर्ण हो।" फिर भी मेरी याचना क्यों उत्पन्न हो जाती है, मुझे इसका वास्तविक ज्ञान नहीं होने पाता, कि मांगना अच्छा है या न मांगना अच्छा है ? हे अबलों के बल ! असमर्थों की सामर्थ्य ! मुझ अबोध के लिए बोध ! निराश्रय के आश्रयदाता ! आप ही कृपा करो, मार्ग दर्शाओ, सन्मार्ग पर चलाओ। मेरी वाणी में तेरी मिठास हो। मस्तिष्क में तेरा विश्वास हो तथा मेरे हृदय में तेरा प्रकाश हो, मन में तेरा निवास हो।

मैं एक और याचना रखता हूं कि चित्त में मेरे तेरी ही स्मृति हो और मन में धृति हो। वाणी पर तेरी श्रुति हो और मस्तिष्क में तेरी ही सुरति हो। बस इससे अधिक नहीं मांगता। इन वस्तुओं को मांगे बिना रह भी नहीं

सकता। यदि ये वस्तुएं भी न मांगनी हों तो प्रभो।

अपने आश्रित को निःसंकल्प और विकल्प से रहित कर दो। आप ही करोगे तो यह मन चुप और शान्त हो जाएगा। तेरे ही संकेत से तृप्त और संतुष्ट हो सकता है और किसी से नहीं हो सकता। इसलिए आप जैसा भी मेरे लिए मंगल देखो, वही ही करो, वही ही करो।

४–१५ प्रातः

वायु दूत

(१) वायु प्रभु का एक बड़ा दूत है। Mail Peon है। जल की सर्दी सूर्य की गर्मी को हम तक पहुंचाता है औषधियों के रसों को हम तक लाता है, जमीन पर पड़े कूड़ा और पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाता है। यह सब शरीर के लिए है।

(२) बुद्धि और मन के साथ बड़ा सम्बन्ध रखता दूरस्थ परमाणुओं को लाकर हमारे हृदयों मस्तिष्क में भरकर हमारे मस्तिष्कों में परिवर्तन करता है। नीचे से पानी और रस को ऊपर ले जाता है। नलके को दबाओ, वायु नीचे भूमि से पानी बाहिर ले आवेगी। Fountain

Pen को स्याही में रखो, ऊपर दबाओ, वायु के दबाव से स्याही ऊपर चढ़ जावेगी।

(३) शरीर पर प्राण का अधिकार है और इसका साक्षात् तब होता है जब मनुष्य को नींद आती है। जो वस्तु उसके हाथ में होती है। नींद मन के अधीन है। नींद आने पर प्राण मुट्ठियां खोल देता है। किसी इन्द्रिय पर किसी का अधिकार नहीं रहता।

(४) वृक्षों के पत्तों का मिलाप और उनकी आवाज और उनकी गति का प्रभाव वायु की सहायता से होता है। संसार के शब्दों की पहुंच इसी से होती है। ज्ञान भी इसी से प्राप्त होता है।

(५) वृक्षों के झूमने से मनुष्य नृत्य करना सीखे।

तिथि २२, ११, ३५—शुक्रवार ४—२५ प्रातः

सुन्दर और भूल मूल्यवान् महल

एक मनुष्य ने बड़ा मूल्यवान् महल बनवाया। अन्दर साजो सामान, फर्नीचर, तस्वीरों से सुसज्जित किया तथा बाहिर टीप सुर्खी करादी। दूर से ही सुन्दर मालूम होता

है। परन्तु गृहिणी स्वयम् तो कोई काम नहीं करती, नौकरानी पर छोड़ा हुआ है। वह गाय भैंस का गोबर (उपले) बना–बना बाहिर की टीपशुदा दीवार पर थापती रहती है। स्वामी और स्वामिनी को प्रतीत नहीं होता कि इस गोबर से दीवार में क्या हानि आएगी। दीवार शीघ्र बेकार हो जाएगी। जो सौ साल चलनेवाली है, वह पहले ही कमजोर हो जावेगी। नाना प्रकार के कीड़े पैदा होंगे, किसी का अनुमान नहीं होगा। मच्छर जैसे मलेरिया फैलानेवाले जन्तु विष का घर बना लेंगे। दूर से बुद्धिमान्, भद्रपुरुष की दृष्टि जब पड़ेगी तो स्वामी की बुद्धि पर शोक (आरोप) करेगा। चूंकि मनुष्य का स्वभाव है कि वह परमात्मा के बनाए हुए अतिमूल्यवान् सुन्दर शरीररूपी महल को भी मल इत्यादि से अपवित्र करता रहता है अपितु रोशनदानों और खिड़कियों को मैल से भरता रहता है। कभी आंख को शर्मरहित होकर मैल से, कभी कान को अश्लील राग रंग की धूल से, कभी मुख को मिथ्या झूठ–निन्दा चुगली, गाली–गलौच की धूल, कूड़ा करकट से भरता रहता है। आहा ! मनुष्य तेरी बुद्धि ! "बरी अकलो दानिश, बबायद गरीसत"। "ऐसी अकल पर रोना", बुद्धिमान् लोग ऐसा कहते हैं जिनको और स्थान नहीं मिलता तो उसी के ऊपर एक–एक इंच का मिट्टी का पलस्तर करा देते हैं। एक टुकड़ा और उसी पर

गोबर थापते हैं, वह टुकड़ा जुदा हो जाने और मिट्टी का तख्ता बन जाने से सुन्दर भी लगता है और दीवार को भी हानि नहीं होती।

उपासना

उपासना का अर्थ तो उप+आसन, समीप बैठने का है। पर यह शब्द केवल, प्रभु की भक्ति में प्रयुक्त किया जाता है प्रभु के समीप बैठने का नाम उपासना है।

वह उपासक तो प्रभु के समीप बैठ सकता है जिसमें वे गुण हों, दूसरे का अधिकार नहीं।

नौकर स्वामी के समीप बैठने का अधिकार ही नहीं रखता, उसे फासले पर बैठना पड़ता है। वह हर समय भयभीत रहता है और वह नौकर भी जिस अन्तर पर बैठता है, वह स्वयं उसे बहुत समीप ही समझता है। इसलिये कि वह अपने स्वामी का आज्ञाकारी है, आज्ञा की प्रतीक्षा करता है। यदि सेवक होकर अभिमान करे तो स्वामी उसे पसन्द नहीं करता। स्त्री और पुरुष, पुत्र और माता पिता, गुरु और शिष्य एक दूसरे के समीप बैठ सकते हैं। प्रभु की समीपता और भी विलक्षण है। उन

सबमें अपनी–अपनी ममता समीप करती है, परन्तु प्रभु की समीपता के लिये ममता का त्याग करना पड़ता है तब समीपता का अधिकार होता है।

प्रभु में दया का गुण है। उपासक यदि दयालु नहीं तो प्रभु उसे अपना सहवास नहीं देते (बख्शते)। प्रभु हमारी त्रुटियों को देखकर कभी प्रकट नहीं करता। जिसे सुधारता है अन्दर से प्रेरणा करता है एकान्त में। ऐसे ही उपासक को बनना चाहिये। दूसरे के अवगुण को देखकर उसे प्रकट न करे। सुधारना चाहता है तो उसे एक़ान्त में प्रेरणा करे। किसी से अन्याय न करे। प्रभु न्यायकारी है जब प्रभु उसे पसन्द करेगा।

किस समान ? पुत्र, माता, पिता, गुरु !

(१) पुत्र जल के समान हो, माता पृथ्वी के समान हो, पिता सूर्य के समान हो, गुरु वायु के समान हो।

(२) पुत्र=पु+त्र। पु अर्थात् नरक से, त्राण कराने वाला। जब जल किसी नदी से चलता है तो जो भी तिनके, कूड़ा, गन्द, नाले व नदी के तहों पर लोगों ने डाला होता है, जल सबसे पहले उसे उठाकर अपने ऊपर ले जाकर दूर बहा ले जाता है। ऐसा जल समान

पुत्र हो जो माता के ऊपर आए दोषों मलों को दूर भगा सके। ऊपर के (वाक्य दोबारा लगाये गये हैं)।

(३) दरवाजे खुले हों परन्तु चिक्कें लगी हुई हों। कारीगर महल बनाते समय जितने छिद्र खिड़कियां, दरवाजे, जाले, मोरी इत्यादि रखता है वह छिद्र सबके सब सुन्दर लगते हैं। यदि मनुष्य बन्द करे तो अन्दर वायु प्रकाश न आयेगा और खराब भी लगेंगे। बुद्धिमान् मनुष्य उनको बन्द करने के लिये बाहिर चिक्कें लगा देता है। जिससे वह और भी सुन्दर लगती हैं। ऐसी अवस्था में वह स्वयं अन्दर बैठा हुआ बाहिरवालों को देखता है और बाहिरवाले उसे नहीं देख सकते। ऐसा ही मनुष्य को अपने शरीररूपी महल के छिद्रों आंख, नाक, कान, मुख आदि को किसी चीज से बन्द नहीं करना चाहिए। अपितु ध्यानरूपी चिक लटका दे, फिर अन्दर से बाहिरवालों को देखे। बाहिरवाला उसे न देखे। (ज्ञानचक्षु से)।

५—८ प्रातः

मग्घर महातम (मार्गशीर्ष माहात्म्य)

यह ऋतु हेमन्त है, मग्घर मास है ! कृषक जन अपने अन्नों को (बीज को) जिसे इतनी देर तक सुरक्षित रखा है, अब उस भूमि माता के चरणों में दे आए हैं जहां

से वह बीज उत्पन्न हुआ था। ऐसे ही मनुष्य को, साधक को वीर्यरूपी धन जो इतने समय तक वह एकत्र करता रहता है, उसे भगवान् के चरणों में लगावे।

करीब ७ बजे प्रातः

मिलाप में भाव का प्रभाव

एक पुरुष ने अपनी स्त्री को विषयवासना (Enjoyment) के लिये थोड़ासा शराब पिला दिया और स्वयं भी पी लिया इसलिये कि आनन्द प्राप्त हो। जब दोनों का गृहस्थ समागम हुआ तो उस स्त्री के मस्तिष्क में सिनेमा में देखी गई एक वेश्या का विचार आया। विषय में दोनों स्त्री पुरुषों को आनन्द तो आया, अपितु गर्भ भी स्थापित होगया। लड़की उत्पन्न हुई, नौ मास पश्चात् बहुत सुन्दर। परन्तु जब वह लड़की बड़ी हुई तो उसके माथे पर कलंक का टीका लगानेवाली सिद्ध हुई। वेश्या बन गई।

यही दशा आत्मिक है मनुष्य जब भगवान् की भक्ति में भगवान् से मिलाप का आनन्द लेना चाहता है तो आंख मूंदते और ध्यान लगाते समय उसके मस्तिष्क के विचारों में प्राकृतिक सांसारिक बातें और व्यवहार के चित्र आते

हैं। वह भी बड़े–बड़े आनन्द देख लेता है परन्तु परिणाम उसकी भक्ति का उसे जन्म जन्मान्तर में निन्दित और फंसानेवाला होता है।

१० बजे

अतिचंचल घोड़ा

मनुष्य का मन तो स्वयं मनुष्य ने चंचल नहीं बनाया, यह तो अनादिकाल से चंचल है। अर्थात् बहुत शीघ्रगामी है। भगवान् की मनोकामना (आज्ञा ही) यही है कि अमृतपुत्र (जीवात्मा) संसार में सैर करे, इस मन रूपी घोड़े पर सवार होकर, जिसकी तीव्रगति की सीमा नहीं। सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु के वेग से वेगवान् है। साधारण मनुष्य घोड़ा खरीदता है तो दस बीस रुपये का जो मार खा–खा कर चलता है। धनवान् मनुष्य पांच सौ रुपये का घोड़ा मोल लेता है वह एक एड़ी के लगाने से ही चलता है। चाबुक की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु राजा महाराजा का घोड़ा जो सहस्रों रुपयों के मूल्य का है वह केवल लगाम के संकेत से चलता है और बहुत तीव्र गति से। और जीवात्मा का घोड़ा तो बड़ा कीमती होना चाहिए था, क्योंकि यह तो ब्रह्माण्डपति भगवान् का अमृत पुत्र

है। इसलिये भगवान् ने उसे ऐसा वेगवाला घोड़ा (मन) दिया कि शीघ्र संसार की सैर कराकर इसे मेरे पास लौटा लाए। जैसे माता पिता अपने पुत्र को जो सैर को कहीं जाता तो कहते हैं कि बेटा ! जल्दी आना, हमें अधिक प्रतीक्षा न दिखाना। हमें चिन्ता न लगी रहे। ऐसे ही वह भगवान् हमारा पिता चाहता है। परन्तु हम लोग यहां ही सैर करते रुक गये। घोड़ा तो इसलिये कहीं नहीं ठहरना कि उसे आज्ञा ही यही है कि वह स्वामी तक पहुंच जाये। जब निकट हो जायेगा, जितना–जितना उस मार्ग के निकट होता है उतना–उतना तीव्रता कम करता है। शान्त हो जाता है।

ज्ञानी से प्रेम क्यों

(२) बच्चे के मुख को ही सब चूमते हैं। मुख ज्ञानेन्द्रियों का स्थान है। इसलिये ज्ञानी ही प्रेम प्यार का स्थान है और शरीर में मन ही मुख है। जहां ज्ञान का कोष रहता है, मन अन्दर रहना चाहिए।

तिथि २५–११–३५ ४ बजे प्रातः सोमवार

मन को थका-थका परमात्मा की अमृत गोद में सुला दो

जिस मनुष्य ने जागृत अवस्था में अपने शरीर को काम में इतना लगाया है कि अंग–अंग इसका थक गया है। जब वह सोता है तो उसे स्वप्न आता ही नहीं। न अपनी सुध, न अपनी निर्धनता, अपने दुःख, अपने ऋण की चिन्ता की, अपने बाल–बच्चों की भी सुध नहीं रहती है, वह बड़ी गहरी नींद सोता है, जो सुख की होती है।

ऐसे ही

जो पुरुष अपने मन को जागृत अवस्था में भगवान् के चरणों में लगाकर ऐसा थका देता है कि यह बेसुध (बेहिर्स) हो जाता है तब प्रभु उस पुरुष को अपनी अमृत गोद में लेकर अपना सच्चा आनन्द दिखाते हैं।

तिथि २७–११–३५ बुधवार ११–३४ प्रातः

यज्ञों में विपरीत संकल्पवाला क्यों नहीं आना चाहिए ?

भलाई (नेकी) भारी होती है। (बुराई) हल्की होती

है। जैसे वायु तिनके को उड़ाकर दूर ले जाती ऐसे बुराई उड़कर दूर फैल जाती है। भलाई नेकी के परमाणु भारी होते हैं, वे शीघ्र नहीं उड़ते और न ही शीघ्र फैलते हैं। अपितु नीचे पड़े रहते हैं। जब परमाणु अधिकता में हो जाते हैं तब उन्हें भी वायु ले जाती है। जहां दस इकट्ठे हों, उनमें एक मनुष्य भी बुरे परमाणु रखे तो वे शीघ्र फैलेंगे। बाकी नौ के दबे रहेंगे अथवा उनमें भी वे बुरे परमाणु लड़ाई करेंगे। इसलिए यज्ञों में, शुभकार्यों में, नेक कामों में कोई विपरीत संकल्पवाला नहीं लाना चाहिए। एक बीमार घर के दस पुरुषों को परेशान (विवश, व्याकुल) कर सकता है। दस १० स्वस्थ एक रोगी पर अधिकार (गलबा) नहीं पा सकते।

समय १–३५ दोपहर

वायु गुरु

उड़ान　　　　गति　　　　शक्ति

वायु गुरु है, गुरु के संग से शिष्य उन्नत हो जाता है। जैसे फुटबाल में वायु भर दो तो वह पृथ्वी से उड़कर कहीं की कहीं ऊंचाई पर पहुंच जाती है। साईकिल के टायर में वायु प्रविष्ट करने से वह तीव्र चलता है। इञ्जन

में वाष्प पैदा होने से वह सहस्रों मन भार खींच ले जाता है। वायुयान में सैंकड़ों मील की यात्रा करते हैं।

रक्षा

धनवान् पुरुष ग्रीष्मऋतु में अन्दर पंखे चलाकर वायु मिलने पर गर्मी से सुरक्षित रहते हैं।

ज्ञान

(३) वायु ही गर्मी सर्दी का ज्ञान कराती है।

शीतलता

(४) ग्रीष्म ऋतु में जब धूप तेज हो, यात्रा न की जा सके, यदि वायु चल पड़े तो धूप का कष्ट नहीं रहता।

(५) यदि जल जो शिष्य है, वायु गुरु के साथ मिल जावे तो आषाढ़ मास की सख्त गर्मी में शीत पैदा कर देता है।

६. उन्नति

जैसे वायु तिनके को उड़ाकर ऊपर ले जाती है वैसे गुरु शिष्य के क्षुद्र मन को बहुत ऊंचाई पर पहुंचा देता है।

७. अभिमान नाश

जैसे वायु वेग से चलकर बड़े–बड़े कठोर अहंकारी वृक्षों को उखाड़कर फेंक देती है, ऐसे ही गुरु की बड़ी कृपा पतित करनेवाले अवगुणों को मूल से उखाड़ देती है।

८. योग्यता

जैसे वायु गीले कपड़े अथवा गीली पृथ्वी से जल उड़ाकर उसे सुखा देती है, ऐसे ही गुरु, शिष्य के ममत्व को उसे अपने अन्दर समाविष्ट करने या प्रकाश=अग्नि, प्रवेश करने के योग्य बना देता है।

२–१५ दोपहर

वायु गुरु

(१) रसाईः

मनुष्य के शरीर में जब वायु (प्राण) न रहे तो जीवात्मा भी निकल जाता है। उस शरीर को फिर दूसरे उठाते हैं। जब तक प्राण है, वही उसको उठाए फिरता है। एक गन्तव्य से दूसरे गन्तव्य (मंजिल) तक पहुंचाता है। ऐसे ही गुरु तम की स्थिति से प्रकाश की स्थिति की ओर ले जाता है।

२. जीवन क्रिया

मनुष्य के शरीर में देखना, भालना, सुनना, सूंघना, चखना, चलना–फिरना, मल मूत्र का त्याग, खाना–पीना, हरकत करना, कामकाज करना, गृहस्थ करना, सब प्राण के द्वार होते हैं।

३. बल, यश, सूरत

व्यान वायु ही पाओं के अंगूठे से सिर की चोटी तक नस–नस नाड़ी–नाड़ी में तमाम भोजन को पहुंचाती है। समान वायु बैलों की भांति जुतकर सब भोजन को एक रस बना देती है। वायु का स्वभाव सम है इसलिए तमाम खाए पदार्थों को एकरस कर देती है। ऐसे ही गुरु अपने शिष्य को सम कर देता है और सारे ब्रह्माण्ड में इसका सुख फैला देता है।

तिo २८–११–३५ गुरुवार ४–२५ प्रातः

शरीर के गुरु एक एक कार्य

पांच प्राण वायु गुरु है

मन के गुरु पांचों कार्य

(१) जो भी जीवन देनेवाला है वही गुरु है, शारीरिक आत्मिक।

(२) माता गुरु है, पिता गुरु है, आचार्य गुरु है। अतिथि संन्यासी गुरु है। परमेश्वर गुरु है। जिनसे इन्द्रियां मन तृप्त हों वही गुरु है।

३. निश्चिन्तता

प्राण और अपान तो माता पिता के समान हैं। जैसे माता पिता बिना किसी प्रत्युपकार के अपने बच्चे के मांगे बिना ही उसकी पालना करते हैं, ऐसे ही प्राण अपान माता पिता समान कार्य करते हैं। जैसे माता पिता की उपस्थिति बालक के लिए चांदनी रात और निश्चिन्तता का जीवन है। ऐसे ही जिसके प्राण अपान ठीक वर्तमान हैं उसे कोई रोग नहीं, निश्चिन्तता है।

४. पाचनशक्ति

समान वायु से जठराग्नि का सम्बन्ध है और वह ग्रहण की हुई खुराक को एकरस कर देती है। यह भी एक गुरु है जो स्थायी गुरु कहलाती है। इसकी वृद्धि प्राणायाम से होती है। जैसे गुरु कुल।

५. व्यान वायु

एक संन्यासी गुरु के समान है जो सब स्थानों, नस, नाड़ी नाड़ी में खाने के रस पहुंचता है।

६. उदान वायु

वह गुरु है जिससे जीव (मनुष्य) की गति होती है। 'गुरु बिन गत नहीं'। वायु से ही शरीर की गति होती है। जब वायु न रहे तो शरीर गति नहीं कर सकता। हिल--जुल नहीं सकता, मृत हो जाता है। इसीलिए कहाः--गुरु बिना गत नहीं। शरीर के गुरु तो ये वायु हैं और गुरु वायु के गुणवाला होना चाहिए।

गुरु उदान-वायु समान

मनुष्य चेतन गुरु होता है जैसे उदान वायु में जीव के रहने से रात्रि को अंधेरे में भी (स्वप्न) में भी चांदनी प्रकाश हो जाता है। और उदान वायु के द्वारा सारी पिछली स्मृति होती है और गुरु के ज्ञान से मनुष्य को अपना जीवन और यहां तक कि पूर्वले जन्म का जीवन भी और भविष्य का भान भी होता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उदान जीवात्मा की सवारी है। जब जीवात्मा इस देह को त्यागता है तो उदान पर ही सवार होकर जाता है अर्थात् गुरु का ज्ञान ही मनुष्य की शक्ति, गति कर देता है। यही लेजाता है, परमात्मा तक पहुंचाता है।

तिथि २६–११–३५ शुक्रवार ५–५० प्रातः

तैनूं अपने भक्त प्यारे, भक्तां प्यारा तूं !

(दृश्य यज्ञ)

वाह प्रभो ! वाह ! आज बड़ी विचित्र लीला दिखाई। आपको अपने भक्त, आपके पुजारी बहुत प्यारे हैं। चाहे संसार की दृष्टि में वे घृणा की दृष्टि से देखे जावें, इनका कोई Regard न हो और संसार विरुद्ध हो जावे परन्तु जब भी तेरा भक्त तेरी शरण में सच्चे हृदय से एक बार पुकार कर देता है। वह स्वयं किसी कारण से आडम्बरी पतित भी माना जाता हो, अनेक त्रुटियां उसमें हों परन्तु उस क्षण के लिये जब वह व्याकुल हृदय से तेरा ही एकमात्र आश्रय तक कर बैठ जाता है। तुझे अपने संकल्प के पूरा कराने में बाधित कर देता है। सचमुच तुझे ऐसी पकड़ में लाता है कि तू अपने आप विरोधियों शत्रुओं के हृदय और मस्तिष्क में ऐसी प्रेरणा करता है कि वे स्वयमेव तेरे भक्त को स्वीकार करने लग जाते हैं। न तो भक्त को मालूम होता है कि कब तूने इसका संकल्प पूरा कर दिया और न ही घृणा करनेवाले के ज्ञान में रहता है कि क्यों अब वह स्वीकार कर रहा

है, विवश होता है। प्रभो ! तू धन्य है। तेरा आश्रय ही एक महान् शक्ति है।

३०–११–३५ शनिवार ३–४० प्रातः

हे यज्ञपति देव ! मेरे रक्षक प्रभो !

आप तो कभी किसी काम का दोष अपने पर नहीं लिया करते। कोई कारण अथवा बहाना ही बना दिया करते हो। मृत्यु का भी आप अपने ऊपर लांछन नहीं लेते हो। कोई न कोई बहाना मृतक के लिए बन ही जाया करता है। इसलिए आपका नाम तो निर्दोष है। भगवन् ! जहां अनेक काम करने हों वहां भी तो सफलता का कारण ही बन जाया करता है। यज्ञ का यजमान सदा निर्दोष ही रहेगा। क्योंकि वह तो कभी अपने लिये विपरीत भाव रख ही नहीं सकता। हे मेरे इष्टदेव ! यह आप ही साक्षी हैं कि इस यज्ञ का पुरोहित नाममात्र पुरोहित है। पुरोहित तो आप ही हो। वह भी आपका यजमान है। यजमान और पुरोहित में ज्ञान भेद से कोई अन्तर नहीं शरीरों का ही भेद है। और आपने मुझे ही प्रेरणा की और मैंने आपकी आज्ञा को पहुंचा दिया। इसलिए भी भगवन् पुरोहित भी यजमान का रूप है। वह भी किसी प्रकार

का विपरीत भाव नहीं ला सकता। इसलिये प्रभो ! आपके द्वार पर आपका ही एकमात्र आश्रय लेकर मैं आपके तुच्छ भक्त तुच्छ पुजारी प्रार्थना करता हूं। प्रभो ! कृपा करो कि सब कार्यकर्त्ताओं में अपने नाम की लाज पालने का अटूट विचार भर देंवे। वह अपने को गैर मानकर विपरीत भाव लाकर बहाना या कारण न बनें। प्रभो आश्रित की चिन्ता तो आप करेंगे ही, फिर भी प्रभो ! मैं अल्पज्ञता के कारण चिन्ताशील हो जाता हूं। कृपा करो ! सहायता करो ! सबकी बुद्धियों के गुप्त प्रेरक सविता देव ! धियो यो नः प्रचोदयात्।

यजमान इष

इष प्राप्ति = इच्छा पूर्ति का अधिकारी

(१) प्रभो ! तू (इष) उस यजमान को मिटाता है, उसी को तू रजाता है। वह रजा हुआ है जो खिलाता है, वह भूखा है जो अपनी भूख मिटाता है।

ओ३म्

तिथि २–१२–३५ ३.५० प्रातः सोमवार।

पशु (कर्म के साधन का रुख़) मनुष्य

(१) कर्म का साधन हाथ पांव हैं, वाणी है, इन्द्रिय

है। परमात्मा ने इन साधनों का रुख नीचे को किया हुआ है। जो मनुष्य कर्म करके, परोपकार करके, सिर की भांति ऊपर हो जाता है, अभिमान करता है, उसका कर्म श्रेष्ठ नहीं रहता। परमात्मन् देव की इच्छा यही है कि मनुष्य के कर्मकाण्ड में नम्रता का भाव रहे। पशुओं के सिर में सींग होते हैं और वे हाथों का काम करते हैं जैसे हाथ सिर पर आक्रमण की रक्षा करते हैं ऐसे सींग करते हैं।

जिन पशुओं के सींग नहीं वे लात और दांत से मुकाबला करते हैं। मनुष्य के हाथ का रुख नीचे, पशु के सींग का रुख ऊपर है। इसलिए जो मनुष्य अपने कर्म के कर (हाथ) को अभिमान से ऊंचा बनाएगा वह भी पशु की भांति होगा।

पशु का सिर नीचे झुका हुआ क्यों ?

पशुओं का शीश इसलिए झुका दिया कि मनुष्य जन्म में वह सिर अभिमान से ऊंचा रखे रहे, कभी झुकाये नहीं। जन्म जन्मान्तर से स्वभाव को दूर करने के लिए परमात्मा ने मनुष्य को शिक्षा दी कि वह पशुओं की ओर देखकर शिक्षा ग्रहण करे और माता की गर्भावस्था को स्मरण रखे कि वहां प्रभु ने उसे मस्तिष्क को नम्र रखने

के लिये नौ मास गर्भ में झुकाये रखा। अर्थात् मनुष्य को प्रकृति आदेश संदेश दे रही है कि उसके ज्ञान और कर्म में विनीतता नम्रता का भाव हो, अहंकार अभिमान न हो।

३. परोपकार, त्याग से मुक्ति भोग से बन्धन

जब तक मनुष्य के हाथ में कोई चीज है, मुट्ठी बन्द रहती है। जब हाथ नीचा करके दे देता है, त्याग करता है तो स्वतंत्र होकर खुल जाता है। अर्थात् त्याग ही बन्धन को खुलवाता है।

मन का श्रेष्ठतम कर्म **सच्चा सुख संतोष** तृप्ति का साधन

मन का इष

जैसे शरीर का इष भोग—अन्न, जल, वायु से होकर तृप्ति होती है। ऐसे मन का भोग (अन्न) सुख है। इष का अर्थ सुख भी है। सुख न तो धन में है, न महल, माड़ी अटारी में। न कुटुम्ब परिवार जिमीनदारी में। सुख तो तब मिलेगा, जब सन्तोष होगा। जब तक मन को संतोष नहीं, तब तक भिखारी गदागर की भांति दिन रात भटकता

दर दर फिरता रहता है। वह तृप्त नहीं होता। भूख नहीं मिटती। संतोष, बिना प्रभु की करुणा के नहीं मिलता और प्रभु की करुणा होती है, प्रभु भक्ति से। मन के लिए श्रेष्ठतम कर्म उपासना है। यही भोजन इष का साधन है। जैसे विशाल सागर में सीप अपना मुख खोले, सारे सागर में अपनी तृप्ति के लिए फिरती रहती है और विशाल समुद्र उसे तृप्त नहीं कर सकता। तथा जब प्रभु कृपा से स्वाति नक्षत्र की एक बूंद ऊपर से उसके मुख में पड़ जाती है, तुरन्त मुख बन्द कर लेती है और तृप्त हो जाती है। उसी तृप्ति से वह मोती पैदा करती है। ऐसे ही मन सीप के समान संसार में अनेक पदार्थों को पाकर भी संतुष्ट नहीं हो सकता। जब एक बूंद भगवान् के प्रेम भक्ति की उसके मुख में पड़ती है तृप्त हो जाता है।

तिथि ३–१२–३५ ३ बजे प्रातः मंगलवार

ज्योति जगने की युक्ति

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदायते। निहोता सत्सि बर्हिषि।

सामo अo।।१।। मन्त्र १

परमात्मन् देव की ज्योति दो प्रकार से जगती है, अन्तरिक्ष में जैसे विद्युत्घर का हिसाब है। सड़कों के ऊपर जो खम्भे लगते हैं वे स्वयम् एवं बिना अन्य के

प्रयत्न के बिजलीघर में इञ्जीनियर के बटन दबाने से लग जाते हैं।

और जो——वह समय के ऊपर बटन दबाने से बुझ जाते हैं। दूसरी बिजली है, मनुष्यों के घरों में मकानों में जिसकी तार ठीक है, वह जब चाहता है, बटन दबाकर अपने घर में प्रकाश कर लेता है। ऐसे ही प्रभु के शासन में उसकी ज्योति ब्रह्माण्ड के अन्तरिक्ष 'बर्हिषि' में वह स्वयं एव जगाता है। (चन्द्र, नक्षत्र–तारागण) और स्वयं ही बुझाता है। परन्तु मनुष्यों के हृदयरूपी अन्तरिक्ष में जिस भक्त की तार ठीक है, वह जब इच्छा करता है अपने मन रूपी बटन को दबाकर प्रकाश देख लेता है। (समाधि में) जो लम्बी समाधि लगाते हैं, उनकी निरन्तर ज्योति जगती रहती है।

४–२८

सामवेद **जीवित कर्म** सोमरस

ओ३म् सोम

(१) जब मनुष्य ऋग्वेद से विज्ञान पाकर यजुर्वेद के अनुसार कर्म करता है तो अब उसे अपने विज्ञान और कर्म में सफलता के लिए भक्ति, प्रभु–कृपा, प्रभु–प्रसाद

की आवश्यकता होती है। जिस कर्म में भगवान् अभिव्याप्त होते हैं वह कर्म स्थायी हो जाता है। वह कर्म संसार में फैल जाता है। सब महापुरुषों के कर्म में प्रभु का अपना हाथ आशीर्वाद का होता है। इसलिए इनका कर्म जीवित रहता है। इनके परमाणु उनके नाम को जीवित रखते हैं।

(२) सामवेद भक्ति का है। स+म=भक्त की (दृष्टि और अवस्था) सम हो जाती है। प्राणिमात्र में अपनी आत्मा को देखता है।

(३) स से जीव, म से प्रकृति, इनके मध्य में जब आ का सहारा हो जाता है तो (आ ब्रह्म है) जीव ब्रह्म प्रकृति बन जाती है। ओ३म् में आ (ब्रह्म) उ (जीव) म (प्रकृति)। जीव उनके मध्य में रहने से उसे भूल हो जाती है। वह जब म (प्रकृति) की ओर देखता है जो उसके सौन्दर्य पर आकर्षित हो जाता है। तब फंस जाता है। अब जब घोर तप भक्ति से भगवान् के चरणों में चला जाता है तो फिर परमात्मन् देव स्वयम् ही जीव और प्रकृति के मध्य में आ जाते हैं। जीव की दृष्टि सदा ब्रह्म पर पड़ती है। प्रकृति सर्वदा उससे ओझल रहती है। उसको कभी फंसा नहीं सकती। वह सदा ब्रह्म के प्रकाश को देखता है। तब प्रकृति परे हो जाती है।

(४) गीता में भगवान् कृष्ण ने इसलिए कहा कि वेदों में मैं साम हूं। इसका मतलब यंह है कि जीव जो प्रकृति में फंसा हुआ था जब वह मेरी शरण में आगया तो मैं मध्य में आगया। ओं का साम बन गया। दो शत्रुओं के मध्य में जब कोई बड़ी शक्ति आजाये तो जो निर्बल हुआ आदमी होता है उसे भी शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह दुष्ट को पकड़कर दूर भगा देता है।

(५) गानविद्या में जब कण्ठ से आ चलता है तो वह रूप बदलता है। आगे आगे होठों में स बन जाता है। और फैलकर 'ह' बन जाता है। कई स्थानों में 'आ ह' से बदल गया है। कई में स से। वही ओ३म् सोम बन गया है।

६—१०

इन्द्र का निवासस्थान

जब किसी बड़े महात्मा या अफसर को घर में बुलाया जाता है और उसके लिये कमरा साफ किया जाता है। जो भी सामान उसमें पहले वर्तमान है, सब निकाल लिया जाता है और कमरे को सुसज्जित कर लिया जाता है। ऐसे भगवान् को अपने मन मन्दिर या

अन्तःकरण में बुलाने से पहले या उसमें निवास कराने के लिये तमाम सांसारिक अलायश (लाग) से पाक साफ करना आवश्यक होता है। और श्रेष्ठमन के अन्दर चरित्र धारण कराये जाते हैं, बजाए चित्रों के।

प्रातः ६ बजे

सूक्ष्म से **मन** सूक्ष्म औजार

बाहर की चीजों को शरीर के द्वारा उठाया जाता है। स्थूल चीज का ग्रहण करने के लिए स्थूल औजार की आवश्यकता होती है, सूक्ष्म वस्तु को पकड़ने के लिए सूक्ष्म औजार की। सुनार बहुत छोटे से सोने के टुकड़े को नकचूनी से उठाता है और जो थोड़ा इससे भी सूक्ष्म हो जो किसी औजार से हाथ नहीं आ सकता, मनुष्य अपनी अंगुली को मुख से थूक (लब) लगाकर चिमटा लेता है। इसका अर्थ यह है कि अत्यन्त सूक्ष्म वंस्तु के ग्रहण के लिए वाणी तथा कर्म का मेल और इसमें नम्रता (लह जल का गुण) इच्छित है।

वाणी कर्म मन के अधिकार में नहीं। परमात्मा का ग्रहण करना जो सूक्ष्मतम है उसके लिये यन्त्र ग्रहण का भी सूक्ष्मतम हो। वह मन है और उसी मनुष्य का मन प्रभु

का पकड़ सकता है जिसकी वाणी कर्म एक समान हो। मन, वचन, कर्म एक हों।

तिथि ४–१२–३५ बुधवार ४।। बजे प्रातः

तेल, बत्ती, नोक

मन का दीपक

प्रभु का प्रकाश कैसे

एक ग्रेजुएट किसी महात्मा के पास गया और कहा कि परमात्मा का प्रकाश कैसे होता है ?

महात्मा ने मिट्टी का दीपक उठाकर उसके सम्मुख कर दिया।

ग्रेजुएट :– क्या यह परमात्मा है ?

महात्मा :– नहीं, जैसे यह जगकर प्रकाश करता है ऐसे मनुष्य का मन दीपक के समान है। उसमें श्रद्धा का तेल हो और दया की कपास को सत्य का वट्ट देकर बत्ती को एक नोंक में इसका सिरा रख दो। (एकान्त जहां दूसरा न समा सके)। अब इस सिरे को जलाओ दूसरे दीपक से।

ग्रेजुएट ने दीपक में तेल डाल दिया और ऐंक बत्ती रख दीया और डब्बी निकालकर तीली को रगड़ा और बत्ती के सिरे से लगा दी। ज्योंहि अग्नि लगी, लगते ही बुझ गई।

ग्रेजुएट ने कहा—यह तो जगी नहीं। महात्मा ने उत्तर दिया कि देखो, इसमें अभी न्यूनता है। तेल जब तक बत्ती के अन्तिम सिरे तक न बढ़ चढ़ जावे, तब तक वह प्रकाश को स्वीकार नहीं करता। और प्रकाश उसे स्वीकार नहीं करता। ऐसे ही जब तक श्रद्धा मनुष्य के अन्दर सिरे तक पहुंच कर तरबतर नहीं हो जाती, उसे प्रकाश स्वीकार नहीं करता।

साधारण श्रद्धा से ज्ञान की अग्नि नहीं जलती।

❖ ❖ ❖

तिथि ५–१२–३५ गुरुवार ४–५० प्रातः

(अव्वल खुवेश, बादा दरवेश)

मन की पड़ौसी इन्द्रियां

जीवात्मा का पड़ौसी परमात्माः—

परन्तु जीवात्मा का मन से प्यार

परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य को अपने समीपस्थ से प्रेम करने का पाठ सिखाया। और समीप तथा दूर में मुकाबला करने के संस्कार दिये। जब मनुष्य को उन संस्कारों से ज्ञान हो जाता है तो वह अपने समीपस्थ पर बलि (कुरबान) हो जाना चाहता है। इस लोक में और परलोक के लिये भी यही सिद्धान्त है। स्वार्थ और परमार्थ में यही नियम चला आता है।

इसलिए प्रकृति का नियम है कि कान जितना समीप की ध्वनि को ग्रहण करता है, दूर की ध्वनि को मिस नहीं करता। आंख समीप देखकर अधिक अनुभव रखती है दूर की अपेक्षा। ऐसे ही त्वचा, नाक और जीभ तो जब बिल्कुल ही पास साथ कोई वस्तु न लगे उसका ज्ञान और भान नहीं करती।

(२) हर मनुष्य अपने घर में भी उसी से अधिक प्यार करता है जो इसके अधिक समीप होता है। शहर में अपने मुहल्लेवाले अधिक प्रिय लगते है। तहसील में अपने गांव का, जिले में अपनी तहसील का और प्रान्त में अपने जिले का, देश में अपने प्रान्त का और विदेश में अपने देश का मनुष्य बन्धु प्रतीत होता है। वह बड़ा प्यारा लगता है।

३. मन को इन्द्रियां समीप हैं

और जीवात्मा को परमात्मा, मन तो इन्द्रियों से अधिक प्रेम करता है परन्तु जीवात्मा परमात्मा से इतना प्यार नहीं करता—

क्यों ?

परमात्मा तथा जीवात्मा के मध्य में पर्दा अज्ञान का

पड़ा है। यह पर्दा बहुत दूर प्रतीत होता है और इसलिए मन का उसे समीप अनुभव होता है। इसलिए मन से अधिक प्यार करता है। और इसी से सम्मति लेता है इसी के आधीन हो जाता है। जब इसका आवरण हट जावे तो फिर मन की बात ही नहीं पूछेगा। एक परमात्मा का हो जावेगा। पुनः उसी परमात्मा से जो अति निकट है, सम्मति, उठना बैठना तथा बातचीत रहेगी।

ओ३म्

समीप

दूर

उपासना

कर्म

ज्ञान

कर्म, उपासना और ज्ञान, ये तीन यंत्र हैं, प्रभु ने दिए हैं। मनुष्य से कई पदार्थ तो अति दूर हैं और कई समीप हैं। इसलिए कर्म के साधन से तो निकट से दूर पहुंच जाता है।

ज्ञान के साधन से दूर को समीप लाया जाता है। उपासना से दूर समीप एक हो जाता है।

तिथि ७–१२–३५ शनिवार ६।। बजे प्रातः

विशाल हृदय

पिण्ड ब्रह्माण्ड का सहारा

(१) शरीर प्रकट में पांवों के आश्रय टिका प्रतीत होता है परन्तु जब प्राण निकल जावे तो शरीर गिर पड़ता है। इसलिए यह सारा शरीर प्राण के आश्रय ठहरा हुआ है, ऐसे ही "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" यह सारा ब्रह्माण्ड भी सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र पृथ्वी सब वायु के आश्रय हैं।

२. स्थान–

वायु का स्थान अन्तरिक्ष है और सारा ब्रह्माण्ड अन्तरिक्ष में है। तथा प्राण भी मनुष्य के शरीर अन्तरिक्ष में (हृदय में) ठहरता है।

(३) सूर्य, चान्द, तारागणों का प्रकाश अन्तरिक्ष में ही होता है, ऐसे ही प्रभु का प्रकाश भी शरीर के अन्तः करण रूपी अन्तरिक्ष (हृदय) में होता है।

(४) लैम्प अग्नि, दीपक सब के सब अन्तरिक्ष में ही प्रकाश देते हैं। जहां अन्तरिक्ष नहीं, वहां प्रकाश किस प्रकार हो सकता है ? जितना अन्तरिक्ष सूक्ष्म होगा, उतना प्रकाश भी अधिक होगा। जितना शफाफ मीडियम होगा, उतना प्रकाश अधिक पहुंच सकेगा।

५. अतिसूक्ष्म शुद्ध पवित्र मन

इसलिए मन को कुवासना और कुसंस्कारों से रहित कर देने और मन को अतिसूक्ष्म (लतीफ) शुद्ध पवित्र (शफ़ाफ़) कर देने से प्रभु का प्रकाश होता है।

६. विशाल हृदय

जितना स्थान रिक्त होता है उतना प्रकाश पड़ता है। मनुष्य का हृदय जितना विशाल होगा, उतना अधिक प्रकाश ग्रहण या धारण कर सकेगा।

६ बजे प्रातः

जहां भी अग्नि जलेगी, यदि उस पदार्थ में कार्बन वर्तमान है, तो पहले धुआं निकालेगी कालापन, दीपक लैम्प, जगता है तो कालिख स्याही बाहर निकालता है। इसका कारण यह है कि अग्नि अपने संग लगे पदार्थ की स्याही (मैल) को अपना प्रकाश देने के साथ–साथ बाहिर निकलती है तथा ऊपर ले जाती है। वह अग्नि क्या जो धुआं को बाहिर न निकाले। लकड़ी में पृथ्वी का भाग होता है। पृथ्वी काली है इसलिए काले कार्बन को प्रकाश दूर बाहिर निकलती है। दीपक में बत्ती और तेल है। इनमें पार्थिव भाग काला है। उसे निकालकर ऊपर फैंकती है।

ऐसे ही

मनुष्य जब गुरु के संग लगता है तो गुरु उसके मन में प्रकाश देते ही—उसके दोष बाहिर उड़ा देता है और उसे दोष भागते हुए साक्षी करा देता है। वह गुरु गुरु नहीं जो शिष्य के अन्दर प्रकाश करे और दोष न निकाले।

ऐसे ही :—

भक्त जब भगवान् की शरण में जाता है तो प्रभु उसके अन्तःकरण में विशेषतः प्रवेश करके प्रकाश करते हैं और उसके दोषों को बाहिर फैंकते हैं। उसे प्रतीत होता हो रहा है कि कितने सूक्ष्म मल दोष कुसंस्कार उसके प्रभु कृपा से उड़े जा रहे होते हैं। वह भक्त ही नहीं जिसके दोष प्रकाश के साथ दूर न होते हों।

तिथि ६—१२—३५ सोमवार ३—१० प्रातः

भगवद् भेंट

ओं उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि।। अ० १-१-४

प्रश्न—भगवान् को भक्त क्या दे, जो भगवान् उससे पृथक् न हो ? शिष्य गुरु को क्या दे जो गुरु का ज्ञान

उसका अंग बन जाए। उससे कभी वियुक्त न होने पावे।

उत्तर—**नि होता सत्सि बर्हिषि**

सामवेद के प्रथम मन्त्र में आया कि भगवान् इस भक्त के जो "होता" रहा है, उसके अन्तःकरण में आ विराजते हैं। होता भगवान् को "उपहूत" से प्राप्त कर सकता है। "उपहूत" का अर्थ है (१) आवाहन किया गया (बुलाया गया) (२) सेवा शुश्रूषा करना (३) प्रार्थना करना (४) उपासना करना। जैसे विद्या तीन प्रकार से प्राप्त की जाती है। अधम श्रेणी की धन देकर, मध्यम श्रेणी की विद्या पढ़ाकर पढ़ना, उत्तम श्रेणी की सेवा करके प्राप्त करना। ऐसे ही भक्ति तीन श्रेणियों से प्राप्त होती है।

कथा का दृश्य

जंगल में एक वृद्धावस्था के ऋषि आसीन थे। एक राजा को ब्रह्मलीन की लालसा थी। वह सुनकर उनके पास भेंट लेकर गया, प्रार्थना की ऋषि ने कहा कि बिना बदले के विद्या प्राप्त नहीं होती, ब्रह्मज्ञान नहीं दिया जा सकता। यह भेंट स्वर्णमयी जवाहर, धन धान्य फल फूल की पर्याप्त नहीं। राजा बोला जो आज्ञा हो"। ऋषि ने कहा "अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर दो। दहेज में आधा राज्य जो श्रेष्ठ भाग है, वह दे दो। राजा ने

स्वीकार किया और उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। यह अलंकार है आध्यात्मिक रूप में। इसका अर्थ यह है कि बुद्धि कन्या है और ज्ञान इन्द्रियां श्रेष्ठ (राज्य कां) भाग है। इन्हीं के देने से ही ज्ञान की लब्धि होती है।

कहावत ! "दिल दे दिया सनम को नज़राना समझ। "उपहूत" उपहूत उप अर्थात् officiating स्थानापन्न हूत हुत करने योग्य। ब्रह्मा का स्थानापन्न मन है। मन को अर्पण कर देने से प्रभु की प्राप्ति होती है। उप अर्थात् समीप। हूत देने योग्य पदार्थ। जीवात्मा के पास जो सबसे निकटस्थ सामग्री है, वह बुद्धि और मन है। बाकी इससे सब परे हैं। इसलिए इनके दे देने से प्रभु की प्राप्ति होती है।

ओ दर दिल तोबा मेहर में आयर्द।
ना बजोर नबज़ार न जारी में आयद।
ज़ोर न युक्ति छुटे संसार।

४–७ प्रातः

बन्धन रक्षा का साधन

१. रुकावट ही रक्षा है :–

नदी की बाढ़ को बन्ध की रुकावट से रक्षा है। वायु

और सूर्य लगने से दीवार की रुकावट रक्षा है। असत्य मांस, मद्य, शराब आदि की रुकावट से मनुष्य समाज की रक्षा होती है। किसी बागी विद्रोही की रुकावट से राज्य की रक्षा होती है। राक्षस या राक्षसवृत्ति की रुकावट से यज्ञ की रक्षा होती है।

(२) रुकावट--रक्षा नहीं अपितु रक्षा का साधन है।

(३) जो रोक पैदा करता है उसे तो लाभ होता है उसकी इच्छा की रक्षा होती है। परन्तु जिसे रोका जाता है उसे हानि होती है।

४--३६ प्रातः

प्रभु के संग लाग

भार जो स्वामी स्वयं उठाता है।

(१) दो प्रकार का बोझ होता है। एक आवश्यक दूसरा अनावश्यक।

(२) आवश्यक बोझ वह होता है जिससे मनुष्य की अपने तन की, मन की, रक्षा होती है।

(३) अनावश्यक भार वह है जिसका अपने तन की रक्षा से सम्बन्ध तो है परन्तु उसमें दूसरों का भाग भी सम्मिलित है।

आवश्यक बोझ को राजा तक स्वयं उठाते हैं

(४) जैसे बूट चाहे दो सेर का भी हो। पोशाक

(सर्दी में जैसे एक गधे के बोझ सा हो जाता है) बड़े से बड़ा धनाढ्य भी स्वयं उठाता है और छाता आदि बाकी खाने पीने की चीज फल मेवा हो तो वह बड़ा आदमी स्वयं नहीं उठाता, नौकर उठाते हैं बड़े से बड़ा शासक भी एक समय अपने पुत्र के बोझ को उठाता है।

ऐसे ही

भगवान् जो सबसे महान् और महाराजाओं का महाराजा है जिसको किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं और जिसकी रक्षा कोई वस्तु नहीं कर सकती, उसे भी अपने भक्त का बोझ उठाना पड़ता है। और प्रभु का भक्त है जो संसार की सब वस्तुओं से ऊपर पहुंचता है, उसे कोई आवश्यकता नहीं रही। वह भी प्रभु की भांति जैसे प्रभु संसार का बोझ उठाये हुये है, वह संसार का भार उठाता है।

नियम यह है कि जो वस्तु अंग बन जाये उसका भार राजा को भी भार नहीं प्रतीत होता। क्योंकि वह भार उसका रक्षक है। एक साहूकार अशरफियों और नोटों को तो अपनी जेब में उठा सकता है परन्तु उससे खरीदी वस्तुओं को नहीं।

४—५४ प्रातः

कोई किसी को क्यों उठाये रखता है ?

पाओं ने धड़ को इसलिए उठाया हुआ है कि सिर इसका सत्कार और नमस्कार करता है। हाथ इसकी सेवा करते हैं।

(२) प्राण ने शरीर को इसलिये उठाया हुआ है कि शरीर की सब कमाई प्राणरंक्षा पर न्यौछावर होती है।

❖ ❖ ❖

८—१०

करोड़पति मजदूर

जो भगवान् की भक्ति नहीं करता वह केवल ऊपर का मजदूर है चाहे वह करोड़पति भी क्यों न हो ?

❖ ❖ ❖

६—२५ प्रातः

जैसे दिन के प्रकाश के पश्चात् रात्री की सोम अवस्था आती है ऐसे ही ज्ञान के साथ कर्म और कर्म के पश्चात् सोम (शान्त) अवस्था भक्त की होती है। जिसमें वह सब प्रभु की महिमा का भान करता है जैसे रात्री को अनंत सृष्टि।

❖ ❖ ❖

६ बजे

किसी का दान में

स्वाद कहां

किसी का दमन में

ताज़ा जलेबी

एक महात्मा के पास एक श्रद्धालु ताज़ा ताज़ा जलेबियां ले गया। थाली में ढककर कहा, "महाराज ताज़ा–ताज़ा हैं, बड़ी गर्म–गर्म हैं और बड़ी स्वादिष्ट हैं" भोग लगाइए। महात्मा और बात में लगे रहे। कुछ विलम्ब पश्चात् क़हा, "महाराज मक्खियां बैठ रही हैं, खराब हो जावेंगी।" ताजा खाकर आनन्द स्वाद लेवें। फिर भी महात्मा ने ध्यान न दिया। कुछ देर पश्चात् कहा, "महाराज मैं बड़ी श्रद्धा से लाया हूं, बड़े कारीगर हलवाई ने बनाई हैं। बड़ा शुद्ध पवित्र है वह। घी भी शुद्ध है। खा के देखें, बड़ा स्वाद आएगा।" फिर चुप।

दो घण्टे के पश्चात् महात्मा ने कहा कि अच्छा बाबा दो खा लेवें। क्या स्वाद श्रद्धालु कहता है—अब तो वह स्वाद नहीं रहा होगा महाराज। ठण्डी होगई हैं, स्वाद तो ताजा में है। महात्मा ने कहा, "फिर जलेबियों में तो स्वाद न हुआ, स्वाद तो ताज़गी में हुआ। जो जीवन को ताज़ा क़रे, वही स्वादिष्ट है। परन्तु भाई, तुम्हारे स्वाद और मेरे स्वाद में भेद है। तुम्हारा स्वाद था दान करने में

अपनी वस्तु खिलाने में। मेरा स्वाद है अपना दमन करने में। स्व=(अपना)+द=(दमन) दान दिया।

तिथि १०–१२–३५ मंगलवार ६ बजे प्रातः

शिखर पर बड़ा विस्तृत स्थान है

प्रकाशित हो, ऊंचा उठ

अग्नि संग

एक का अनेक हो जा

(१) जो हवि अग्नि के संग अग्नि की शरण में पड़ती है, अग्नि उसे प्रकाशित करके ऊपर ले जाती है और ऊपर ही विस्तृत कर देती है।

(२) जितने भी पदार्थ बड़े हुए देखे जाते हैं वे ऊपर जाकर एक के अनेक नज़र आते हैं। एक बीज भूमि में पड़ा, जब वह ऊपर बढ़ा जो अनेक पत्ते, अनेक फल एक में लगे।

(३) ऐसे ही आत्मा जब प्रभु के संग, प्रभु की शरण में पड़ता है तो प्रभु उसे ऊपर की मंजिल में कर देते हैं और फिर वह सारे वायुमंडल में फैल जाता है। बढ़ जाता है।

६ बजे प्रातः

संसार रूपी सलेट की पैंसिल

सलेट काली है, इस पर किसी भी रंग से लिखा, सब फीके होंगे और कई दिखाई तक न देंगे। काली, पीली, नीली, लाल, ज़र्द रंग से लिखो तो दिखाई कुछ न देगा। सब बेकार हैं परन्तु जब सलेटी पैंसिल जो इसी पत्थर की है, काली है। इससे लिखी तो तुरन्त श्वेतता लिखने में आती है। ऐसे ही संसार रूपी सलेट पर जब भी श्वेतता लावे तो मन रूपी पैंसिल लावेगी। मनको भी "असितो रक्षिता" "प्राची दिग् अग्नि" में कहा गया है।

तिथि ११–१२–३५ बुधवार ६–१५ प्रातः

पुस्तक से **उपदेश** अंतःकरण से

(१) माश्की जो मश्क भर के छिड़काव करता है। उससे भूमि के अन्दर पानी नहीं जाता। ऊपर की धूलि को थोड़ी देर लिए शान्त करता है। परन्तु आकाश से प्रभु की वर्षा होती है तो अन्दर बाहिर भूमि को भिगो देती है तथा कई दिन तक बाहिर इसका प्रभाव रह जाता है। अन्दर तो भाग्यवान् कृषक इसे उपजाऊ कर लेता है। ऐसे ही उपदेश (जल) दो प्रकार का है। जो उपदेशक

पुस्तकों से मस्तिष्क की मशक भर के जनता की म
रूपी भूमि पर वर्षा करते हैं वह छिड़काव के समान है
जैसे माश्की नाली खाड़े से पानी लाता है। दूसरे ज
आकाश (अन्तरिक्ष) अर्थात् अपने अन्तःकरण से वर्षा करते
हैं वे जनता की भूमियों (मनरूपी भूमियों पर) गहरा प्रभाव
करते हैं तथा भाग्यवान् उससे ज्ञान भक्ति की उपज क
लेते हैं।

(२) पशु अपनी प्यास नाली (खाड़े) से शान्त क
लेते हैं परन्तु मनुष्य शुद्ध कुएं का जल ही प्रयोग करत
है।

(३) धनवान् पुरुष तृषा शान्ति के लिए शीतल जल
बर्फ का शरबत तथा सरदाई से तृप्ति करते हैं वे प्यास
रजोगुणी विधि से, शौकीनी से शान्त करते हैं। उनकी
पाचनशक्ति विकृत हो जाती है, वे पचा नहीं सकते
परन्तु फकीर लोग शुद्ध ताजे जल से अपनी तृप्ति करते
हैं। यही दशा जनता की है उपदेश के सम्बन्ध में।

४—३४

जीवन निर्वाह

मनुष्य का जीवन निर्वाह दो प्रकार का है एक
पाशविक दूसरा मानुषिक। खान पान के लिए बाहिर की

आवश्यकता है, जंगल की। विश्राम के लिए अन्दर की आवश्यकता है, नगर की।

तिथि १२–१२–३५ गुरुवार ४–१५ प्रातः

एक माता **महाभारत संग्राम** पांच पिता

अथर्व० काण्ड १ सूक्त २ मन्त्र १, २, ३

सरकाना, मूंज, दर्भ :–

(सरकण्डा)

मनुष्य का जीवन संग्राममय है। संग्राम तीन प्रकार का है। शारीरिक संग्राम, हथियारी (आस्त्रिक) संग्राम, मानसिक संग्राम।

(१) शरीर का तो रोगों के साथ संग्राम रहता है। आरोग्य प्राप्ति के लिए इसमें औषधि की आवश्यकता है। सरकाना, मूंज, दर्भ, अकसीर औषधियां हैं। ज्वर से लेकर क्षय रोग तक, पीलिया, यरकान, पाण्डुरोग दमा, खांसी, नेत्र रोग, हरनिया (पहाड़), सिर चकराना, जनून, सिलसिल वात, सोज़ाक, रुक–रुक के पेशाब आना, पेशाब की रुकावट, अतिसार, पेचिश, खुश्की, सूखना इत्यादि को हटाते हैं।

(२) देश प्राप्ति के लिए संग्राम अस्त्र की आवश्यकता

है। सरकाना, मूंज दर्भ आदि से तीर कमान आदि अस्त्र बनता है।

(३) अब मानसिक संग्राम (आध्यात्मिक) में वेद के पवित्र मंत्र आदेश करते हैं। जैसे सरकाना की उत्पत्ति के लिए एक माता और पांच पिताओं की आवश्यकता है। भूमि माता (हाइड्रोजन, आक्सीजन) मित्रावरुणा, सूर्य—चन्द्र व्यान, प्राण पर्जन्य (बादल बरसना) पांच पिता हैं। सब वनस्पतियों में इन छः वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। परन्तु सरकाना के लिए स्वर्ण रंग की पीली रेतली भूमि वाञ्छनीय है। इसी में उत्पन्न होकर इतने रोग निवृत्ति के गुण बनते हैं तथा जंगली पशुओं की जो हिंसक नहीं और यज्ञ के लिए उपयोगी हैं का जीवन आधार है।

ऐसे ही

जीवात्मा के आध्यात्मिक रोग को दूर करने के लिए एक माता और पांच पिता चाहिएं। ब्रह्मविद्या (गायत्री) माता है, यह भूमि स्वर्ण रेतली है जिस पर सब कुछ लीन हो जाता है। तथा फिल्टर (Filter) होकर जल जाता है।

(१) सत्संग (पर्जन्य) है, जो अमृतवर्षा करके ब्रह्म विद्यारूपी भोगती है।

(२) प्रेम (ब्रह्मचर्य) मित्र और वरुण हैं।

३. अतितड़प, लगन, जिज्ञासा

(सत्) आक्सीजन है (दान, प्राण)

(४) ब्रह्मचर्य (परोपकार, सेवा) सूर्य है।

(५) पुरुषार्थ (अत्यन्त) चन्द्रमा है।

जो चन्द्रमा नम्रता लगातार पुरुषार्थ करता रहता है और ब्रह्मचर्य (सूर्य) के आश्रय बढ़ता है।

पांच पिता

(१) दीर्घ काल (२) नैरन्तर्य (३) सत्कार (श्रद्धा) (४) सेवा अमल (५) दृढ़ भूमि की आवश्यकता है।

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।।"

(योगदर्शन समाधि पाद १४० सूत्र)

तब जीवात्मा का आवरण दूर हो सकता है और इसका आवागमन के रोग से भी छुटकारा हो सकता है।

तिथि १३–२२–३५ शुक्रवार ६–३ प्रातः

मख यज्ञ से मोक्ष

मोक्ष मोह+क्षय से होती है और मोह तब तक है जब तक इसके मध्य में लगमात्र है (लगाव) आसक्ति

Attachment है। मोह में से ओ को उड़ा दे तो (म+ह) रह जाता है। म+ख मख से मोक्ष होती है। मख का अर्थ है यज्ञ।

४—३०

मनोविकार को शुद्ध करने की विधि

दोषपूर्ति के लिए संग्राम

पृथ्वी में यदि शिगाफ़ पड़ जावे तो मिट्टी से ही उसको पुर किया जा सकता है। जल में दोष आ जावे सड़ान गन्दगी तो जल अपने स्रोत दरिया या सागर में मिल जाए तो शुद्ध हो जाता है। अग्नि बुझ जावे तो अग्नि से प्रज्वलित (प्रदीप्त) हो सकती है। वायु अशुद्ध हो जावे जो वायु यज्ञ की वायु धूप गुग्गुल की वायु अथवा आंधी तूफान से शुद्ध होगी।

ऐसे ही

मनुष्य के मनोविकार को भी इसी विधि से शुद्ध किया जावेगा।

डाक्टर लोग प्लेग से बचाव के लिए शरीर में प्लेग पैदा कर देते हैं इन्जैक्शन करके। जहां कीड़े उत्पन्न होकर बाहिर के प्लेग के कीटाणुओं का मुकाबला करते हैं। मन को काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार शत्रु लगे हुए हैं। यह शत्रु बाहिर के हैं। अन्दर भी शत्रु पैदा किए जावें

तो मुकाबला करेंगे। काम को (ईश्वर प्राप्ति की कामना), क्रोध को (पाप और शोक के विरुद्ध, (मन्यु) लोभ को (सेवा का लोभ), मोह को (इश्केहकीकी) ईश्वरीय प्रेम, अहंकार को (आत्म–अभिमान, आत्मसम्मान) दूर कर सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।

माता पिता के गुण धारण कर

भरण से तरण, माता पिता, जीवन से रक्षण

सृष्टि के आदि में सब के सब बिना माता पिता के उत्पन्न हुए। इसलिए कोई किसी का पिता नहीं कोई किसी का पुत्र नहीं। सबका एक ही माता पिता है पृथ्वी माता। पर्जन्य, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और अग्नि आदि पिता हैं। उनके गुण धारण करने से (मन में) मन जन्म–जन्मान्तर से छूट जाता है।

तिथि १४–१२–३५, शनिवार ३ बजे प्रातः

जल जन्म जीवनाधार

जलयोग

प्राण शरीर आधार — जल प्राण आधार

ब्रह्माण्ड वायु आधार — जल वायु आधार

जल सुरक्षा आधार

(१) जल सुरक्षा का साधन है।

(२) भगवान् की प्राप्ति का साधन योग है।

(३) और योग जल का गुण है।

(४) संसार की सब वस्तुएं इसी जल के योग से बनी हैं।

(५) रेलगाड़ी जलकर राख का रूप हो जाती, यदि इंजन में जल न होता, मोटर कार मार्ग में ही फेल हो जाती, यदि जल की सहायता न हो।

साइकिल सवार का जब पंक्चर हो जाता है तो जल की सहायता से ही टांकी लगाता है। रेल तथा मोटरों वाले सर्द पानी अपने साथ रखते हैं।

(६) इस ब्रह्माण्ड की स्थापना वायु से है।

इसे वायु ने उठाया हुआ है परन्तु वायु का आश्रय जल है। शरीर का प्राण ही आधार है। परन्तु प्राण का आधार जल है। **जलं वै प्राणः।**

(७) राजा लोग अपने किले की रक्षा बाहर खाई में जल भरने से करते हैं। स्वयं परमात्मा ने सब देशों की रक्षा पहाड़ों और जल से की है और पृथ्वी के चारों ओर जल है। नीचे ऊपर जल है। सूर्य आदि सारे नक्षत्रों के गिर्द (चारों ओर) जल है। इसीलिए इस जल को भगवान् ने सुरक्षा का साधन बनाया।

(८) संसार में तीन प्रकार की शक्तियां (आकर्षण) हैं। जल में आकर्षणशक्ति है।

(९) जल का जन्म से लेकर मरण पर्यन्त सम्बन्ध है। बालक को जन्मते ही इसी से शुद्ध किया जाता है।

(१०) बिना जल की सहायता के बालक बाहिर नहीं आ सकता।

३–५५

जल ज्योति

सृष्टि के आदि में सबसे पूर्व जो प्रकाश का दर्शन, प्रतिबिम्ब सूर्य और चन्द्रमा का और अपना जिसमें देखा वह जल था। जिनमें जल ज्योति का दर्शन होता है। क्योंकि जल में ज्योति है। **"ओ३म् आपो ज्योती रसो अमृतम्।**

❖ ❖ ❖

४–२० प्रातः

जल सर्व होम औषधि

(१) जल ही बल है, जल में बल है (वीर्य)।

(२) जल ही बल है, जल सर्व होम औषधि है। बल (Well) करनेवाली (बिमारी से) रोग से बल करनेवाली औषधि है।

(३) जल इतना नरम है परन्तु इसमें अनेक बल (टेढ़ापन) हैं। नदी जब बहती है तो इसके बलों का (मोड़ों का) पता नहीं लगता।

(४) जल ही मल है (मूत्र आदि)

(५) जल ही तल है (पृथ्वी नीचे जल है)

(६) जल ही हल (समाधान) है (प्राणियों के भोजन का)

(७) जल ही दल है (बारिश का आदर्श)

(८) जल ही अल है (वंश उत्पत्ति का)

(९) जल ही फल है (रस का संग्रह)

(१०) जल ही टल है (बरफानी तोदे)

(११) जल ही चल है (गति)

(१२) जल ही रल है (मिलाप)

जल ब्रह्मा है (मति) उपजाऊ और प्राणियों की उत्पत्ति करता है।

जल विष्णु है सारे संसार का चालन करता है।

जल महेश रुद्र है, गरकाब कर देता है।

५—२६ प्रातः

१. जल का रंग हरा है क्योंकि सारी वनस्पतियों, औषधियों, अनाज, फल, चाहे किसी रंग के हों परन्तु

पत्तों का रंग सबका हरा होता है। घास से लेकर बड़े–बड़े वृक्षों तक जब जल बरसता है, हरियावल ही हरियावल हो जाती है।

२. हरि का अर्थ है हरनेवाला, दुःखों के हरनेवाले को हरि कहते हैं।

करीब २–४५ प्रातः

सुमित्र

वेद का एक सूक्त जल सूक्त है। इसमें कहा है कि जल माता और बहिन है। शरीर में जल का स्थान वाणी है। जल ही सभ्यता है। अन्य देशों में जब कोई वक्ता भाषण देता है तो कहता है, "लेडीज एण्ड जैन्टलमैन" "[Ladies and gentlemen]" परन्तु भारत की सभ्यता यह है कि जब भी कोई वक्ता अपना भाषण देता है तो अपनी वाणी से कहता है "प्यारी माताओ, भाइयो और बहनो" यह कौन करता है ? दूसरी स्त्रियों को अपनी माता और बहन की पदवी दे सकता है जिसमें जल के गुण होते हैं। परोपकारी सेवक, सरदार, नेता और नम्र भाव रखनेवाला सज्जन पुरुष ही दूसरी स्त्रियों को माता, बहन समझता है। इसीलिए वेद कहता है **"ओ३म् सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु।** यजु० ३६।।२६।। कि जो सुमित्र

हैं सज्जन पुरुष हैं, परोपकारी हैं सुमित्र। मित्र औ
दुर्मित्र में भेद है। सुमित्र वे हैं जो जीवन दान देते हैं
आत्मा का कल्याण करते हैं। मित्र शरीर के भले व
सोचते और कहते हैं। न वे आत्मिक कल्याण की तथा
ही अकल्याण की।

दुर्मित्र संगी और मित्र हैं। परन्तु ब्रिज, पियाल
मांस आदि के हमनिवाला (सहभोजी) हमपियाल
(मदिरासेवी) तथा उनसे वास्तव में हमारा अकल्याण
होता है। उनका संग घाटे का सौदा है।

सबसे बड़ा भला मित्र वह है जो जीवन दान कर
है। प्राण अन्न जल दान करता है। वह होता है याज
यज्ञ करनेवाला। इसलिये सुमित्र का अर्थ होता है य
करनेवाला।.......वेद का यही सूक्त कहता है कि जल य
करनेवालों के लिये माता और बहन बनकर अवश्य
काम आता है।

६—२० प्रातः

अद्भुत औषधालय

मनुष्य का शरीर एक भारी औषधालय है, हस्पता
है। मन डाक्टर (वैद्य) है। चित्त कम्पाउंडर है। बुद्धि न
है। इन्द्रियां, मुख (वाणी) दृष्टि, हाथ, प्राण (थूक, मू

वृत्तियां (संकल्प) दवाइयां हैं। इस शरीर द्वारा आत्मा का कल्याण होता है। मन वैद्य के समान गुणी ज्ञानी हो, चित्त चतुर हो वैद्य की आज्ञा का सर्वथा पालन करे। बुद्धि रक्षक हो, रक्षा करे। वृत्तियां (संकल्प) शुद्ध, पवित्र हों।

तिथि २५–१२–३५

४–४० प्रातः रविवार

मन की शुद्धताई

स्वयं जल तो अमृत है परन्तु जिस जल में तालाब में पशु पानी पीते हैं वह जल अशुद्ध होता है। मनुष्य के स्वास्थ्य के विरुद्ध है। इससे अरोग नहीं रहने देता। उस शुद्ध जल का पान करना चाहिए जो पशु नहीं छूते।

अर्थात्

मन जल है। वृत्तियां इसका बहाव हैं। इन्द्रियां पशु गाएं हैं। जो मन इन्द्रियों के विषयों से दूषित हो चुका है वह जीव आत्मा के योग्य कैसे रहेगा, शुद्ध मन चाहिए और आरोग्यता (शान्ति) की प्राप्ति के लिए।

जब मन को इन्द्रियों के संसर्ग से रहित कर दिया जाता है। शुद्ध पवित्र जल का स्रोत बन जाता है।

जीवात्मा जब इस अमृत का पान करता है अथवा डुबकियां लगाता है तो आरोग्य हो जाता है। शक्तिशाली बन जाता है। शुद्ध पवित्र हो जाता है और फिर परमात्मा के दर्शन कर सकता है। इसलिए पहले मन को शुद्ध पवित्र करो।

तिथि २५–१२–३५, ४–१५ प्रातः

थकान का कारण

१. मनुष्य काम करते करते थक जाता है। चलते, दौड़ते, खेलते सोते और जागते–जागते भी थक जाता है। बैठे–बैठे बोलते–बोलते विषय करते थक जाता है। और पशुओं की अपेक्षा शीघ्र थक जाता है। इसका क्या कारण ?

मनुष्य का शरीर सब कामों में और सब दशाओं में जितना–जितना प्राण अधिक व्यय करता है उतना ही शीघ्र थक जाता है। मैथुन करते समय ६४ सांस दो पल में व्यय होते हैं। इसलिये विषय की दशा में बहुत ही शीघ्र थक जाता है और बैठने में १५ श्वास २ पल में जाते हैं तो बहुत देर तक बैठने के पश्चात् थक जाता है। अभिप्राय यह है कि प्राण की गति पर थकान का

मदार (निर्भर) है। यदि मनुष्य चाहे कि मैं बिल्कुल न थकूं तो प्राण को बिल्कुल व्यय न करे। योगी लोग जितनी देर समाधि में प्राण को रोककर बैठते हैं, उसको कोई थकान नहीं होती, चाहे वे वर्ष भर की भी समाधि लगाए रखें।

अनथक पुरुषः—

(२) परमात्मा ही अनथक एकरस और सर्वदानन्द है। इसलिए प्राण को उनके चरणों में अर्पण करने से मनुष्य अनथक बन जाता है। (३) जितने प्राकृतिक काम हैं सब के सब प्राण की अधिकाधिक आहुति मांगते हैं। एक भगवान् हैं जो कम से कम आहुति लेकर निहाल मालामाल कर देते हैं। (४) जिनमें आहुति अधिक, उनमें आनन्द कम और जिनमें आहुति कम उनमें आनन्द अधिक। बालक अपने पिता को नाखून भर चीज तोड़कर देता है। पिता अति–अति प्रसन्न हो जाता है। कुत्ते को सारी रोटी डाल देता है। वह इतना प्रसन्न नहीं होता अपितु और लेने के लिए पूंछ हिलाता है। परन्तु पिता उसी से ही रज जाता है।

च्यूंटी और पलेत्र से भक्त को उपदेश

(५) सब प्राणी थक जाते हैं। परन्तु च्यूंटी २४ घण्टे

काम करती रहती है। सोती नहीं। पलेत्र २४ घण्टे पड़ा रहता है, हिलता नहीं। ये भी दोनों नहीं थकते। भगवान् के भक्त के लिए ये दोनों आदर्श हैं। समाधि में पलेत्र की भांति, कि कोई हिलाए, हिले नहीं और पुरुषार्थ में च्यूंटी की भांति अपना मार्ग कदापि न छोड़े। चाहे ऊपर विपत्ति आजावे। मान में अभिमान में (दान में, ज्ञान में, ध्यान में) च्यूटीं तुल्य अपने आपको समझे। प्रभु प्राप्ति में एक पल भी चुप न रहे।

६—१ प्रातः

पशु जिह्वारहित मनुष्य जिह्वासहित

याचक और याचना रस

याचना वही कर सकता है जिसकी जिह्वा है। जिसकी जिह्वा नहीं वह कैसे याचना करेगा। जितने भी पशु हैं इसीलिए जिह्वारहित कहलाते हैं और मनुष्य जिह्वावाला कहलाता है। शारीरिक सुख की याचना तो सब जीव किसी न किसी भांति कर ही लेते हैं। परंन्तु शारीरिक दुःख को प्रकट करने के लिए जिह्वा का उपयोग नहीं। जो आध्यात्मिक मानसिक दुःख के लिए फरियाद करे वही मनुष्य है। अन्यथा पशु है। भगवान् ने जिह्वा

इसीलिए नहीं दी, कि वह इससे खाने का आनन्द लेवे। वह वास्तविक आनन्द तो याचना में, दुःख को प्रकट करने में और दुःख के दारु में लेवे।

यही कारण है कि

पशु का बालक जब माता के गर्भ से बाहिर आता है, तो मौन होता है और मनुष्य का बच्चा चीखता है। रोता है। याचना करता है। याचना उसके सम्मुख की जाती है जो सुनकर दर्द मिटा सके और जो याचना से सम्बन्धित हो, रक्षक हो, बलवान् हो, उसे याचक की याचना से दर्द उत्पन्न हो, और वे होते हैं सबसे पहले सुननेवाले माता और पिता। यह माता–पिता तो शारीरिक दुःख तो सुनते हैं। वे परमेश्वर वास्तविक माता पिता मन की याचना सुनते हैं। जो इस जीवात्मा का सच्चा माता पिता है।

❖ ❖ ❖

६–२७ प्रातः

मनुष्य और पशु की मूत्रेन्द्रिय का भेद

मनुष्य जब लघुशंका करता है तो मूत्र (पानी) उसके सामने आंखों के होता है। इसलिए उसका नाम फारसी वालों ने "पेश, आब", रखा। पशु जब पेशाब करता है तो उसकी आंखों से ओझल होता है। नीचे या पीछे।

संस्कृत में मूत्र मू (बन्ध)+त्र (रक्षा) जो बन्ध से रक्ष करे, प्रकृति की आदि काल से यही इच्छा है कि मनुष्य की आंखों के सामने जल के गुण रहें। जो प्राण जल के गुणों को जब तक धारण नहीं करता वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। जल का देवता वरुण है और वरुण प्रभु उसे ही स्वीकार करते हैं जो जल–समान बन जाता है और वही भक्त इस वरुण को वर सकता है जो वरुण की सम्पत्ति (जल) बन जाए। इसीलिए सन्ध्या और हवन में सबसे पहले जल हथेली पर सम्मुख किया जाता है मनुष्य के शरीर को जल शुद्ध करता है तो मन को जल के गुण। जल हरियावल पैदा करता है। मनुष्य (भक्त) का मन हरा भरा हो जाता है। जो इस हरियावल को देखता है उसके दु:ख भी हरे हो जाते हैं। उसे ताजगी और तरावट आजाती है। (२) मनुष्य–मात्र की मूत्रेन्द्रिय आगे है और पशुओं की नीचे और पीछे।

(३) पशुओं की उपस्थेन्द्रिय और गुदा जन्म से ढपी हुई होती हैं ओर मनुष्य की नंगी। ढपने में कामचेष्टा बढ़ती है और नंगे रहने में तप के परमाणु अधिक आते हैं। कामचेष्टा रुकती है। इसलिए मनुष्य को परमात्मा ने संयमी रहने का आदेश किया। जिन देशों में जंगली लोग नंगे रहते हैं उनमें कामचेष्टा पशुवृत्ति से नहीं होती।

संसार के आरम्भ में भी ऐसे हुआ। बच्चे जब तक नंगे रहते हैं उनको कभी बुरा विचार नहीं आता। जब उनको ढांप दिया जाता है तो कुसंस्कार आ जागता है। अब मनुष्यों ने इन्द्रियों को ढांप दिया है परन्तु कर्मों को नहीं ढांपा, वास्तव में कर्म को ढांपना था। शरीर को ढांप देने से उसकी चेष्टाएं बढ़ती हैं। वह कमजोर होता है और इनको खुला रखने से सहनशील बन जाता है।

१०—४८ प्रातः

भक्त का आहार

भगवान् का भक्त वही है जो शेष खाता है। और खाना पहले भगवान् के अर्पण करता है या भगवान् के देवों के अथवा भगवान् के मार्ग पर लानेवाले महान् आत्माओं, साधु सन्तों, विद्वानों के अर्पण करने के पश्चात् या प्रभु की प्रजा में दुःखी, दरिद्रों को देने के पश्चात् खाता है।

जो मनुष्य किसी ऐसी वस्तु को जो प्रभु अथवा प्रभु की प्रजा या विद्वान् या महान् आत्माओं के अर्पण नहीं होती, अथवा नहीं हो सकती, और उसे खा लेता है वह भक्त नहीं है, वह कृपान है या कृतघ्न है। इसलिए नशा,

नशीली वस्तु जो अर्पण करने के योग्य नहीं, यदि कोई भक्त इनका प्रयोग करता है तो वह भक्त नहीं रह सकता।

तिथि २७–१२–३५ शुक्रवार ७ बजे प्रातः

भोजन से भजन कब ?

(१) प्रभु ने हम मनुष्यों के लिए जो भोजन बनाया, वह भजन करने के लिए बनाया है। एक अन्न को जब पैदा करने लगा तो पृथ्वी जैसी माता का गर्भ उसे दिया। और सूर्य नारायण, वायु और जल, ये सब देवता इस अन्न के पिता बने। इन सब देवताओं ने इसे बढ़ने, पकने में अपना सारा परिश्रम व्यय किया। तब यह अन्न देवता बना। जिसे मनुष्य खाता है। यह मनुष्य (जीवात्मा) प्रभु का बड़ा प्यारा पुत्र है। इसलिए देवता इसके लिए भोजन तैयार करते हैं। और स्वयम् भोज्य पदार्थ भी एक अन्न है। अब यदि मनुष्य दिव्य भोजन को दिव्य भावों से नहीं खाता, वह क्या भजन कर सकेगा ? कब प्रभु का प्यारा कहलाएगा ? भक्त के लिए उपासक के लिए तो अन्न लेने में ऐसी भावना करनी चाहिए। प्रभु का यज्ञशेष, प्रभु का प्रसाद समझकर खाना चाहिए।

राजा और रंक समान कब ?

(२) राजा और रंक कब समान होते हैं, न कभी कोई धन में एक दूसरे के समान हो सकता है, न बल में, न उपकार में, न सेवा में, न दान में, न सुन्दरता में, न सौभाग्य में, (मान) में, न यश में, न शान में कोई समान है। कर्म और ज्ञान में कभी कोई समान नहीं बन सकता। केवल एक वस्तु है।

नमन :—

जब राजा ने मस्तक टेक दिया, शीश झुका दिया, अथवा कभी जब निर्धन ने माथा टेक दिया, दोनों अब समान होगए। शीश के झुकाने से सर्वस्व झुक गया। मान का त्याग होगया। राजा और रंक समान होगए अर्थात् प्रभुभक्ति प्रभु उपासना सबको समान कर देती है और यही कसवट्टी है प्रभु भक्त की। "प्रभु के सिमरण बिनसे दूजा" (यह दुई अभिमान से उत्पन्न होती है)

गान में तान कब ?

(३) शब्द अपने भावों के आधार पर अपनी अनूकूल प्रकृतिवालों को आकर्षित करते हैं। कोई मनुष्य अश्लील इश्किया (कामपूर्ण) गीत गा रहा है। चाहे वह कितना ही

सुरीला क्यों न हो, उसी गन्दे स्वभाव के मनुष्य ही खिंचे आएंगे। धर्मात्मा के कान ही नहीं हिलेंगे। कोई भक्ति के गीत गा रहा हो तो जाति के परवाने दौड़े जाएंगे। तथा इनमें बिजली भर जाएगी। कोई भक्ति के तान तन रहा है तो भक्त मस्ताने मस्त होकर जाएंगे। जैसे बीन पर सांप, थाली के बजने पर जंगली चूहा नाचता है और जब वेद के पवित्र मंत्रों का स्वर से गान हो और उधर गानेवाले का भाव आवाहन का हो तो प्रभु के प्यारे नेक पुरुष विद्वान् और स्वयं भगवान् खिंचे आकर गानेवाले को आशीर्वाद देने आएंगे। उस पर छत्रछाया करके झूलेंगे। तथा गान करनेवाले में आलमं मस्ती महवीयत (मग्नता) आनन्द (तारी हो) छा जाएगा।

१ बजे दोपहर

ग्रहण ऊपर और प्रकट होकर त्याग नीचे और गुप्त होकर करो

(१) शरीर का मैल हाथ से उतारा जाता है ऐसे ही शरीर और शरीर की इन्द्रियों के पाप (मैल) भी कर अर्थात् कर्म से जिसका साधन हाथ (कर) हैं उतरते हैं।

(२) ज्ञानेन्द्रियां खुली हुई हैं, वे सदा ग्रहण करती

और कमेन्द्रियां जो खुली हुई हैं वे पहले त्याग करती हैं तथा अन्य कर्म इन्द्रियां जो ढंपी हुई हैं वे ग्रहण और त्याग करती हैं। प्रकृति का शासन बतलाता है कि हाथ जब ग्रहण करें तब ऊपर होकर करें और प्रकट होकर करें। परन्तु जब त्याग करें तब नीचे मुख होकर करें और गुप्त करें।

(३) कर्म चाहे ढपी इन्द्रियों से हो या सुराखदार इन्द्रियों से, सदा गुप्त और एकान्त में होना चाहिए। तब ठीक रहता है।

(४) परमात्मा ने जिह्वा को बहुत गहरा और सीधा बनाया है, इसलिए जिह्वा को सत्य सही और सीधा बोलना चाहिए। और गहरी तोल से बोलना चाहिए, इसका प्रभाव गहरा होता है। चाहे बुरा बोले अथवा भला।

६—३५ सायं

जप अवश्यमेव फल लावेगा

लोग कहते हैं कि अमुक मनुष्य प्रभु का जप तो बहुत करता है परन्तु अभी तक उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। जब कोई दोष ही नहीं छूटा तो जप करना

निष्फल है। इसके समझने में बड़ी भूल है। जप करने से
अवश्यमेव मैल दूर होती है।

प्रकट में बेशक दूर होती नहीं दिखाई देती परन्तु
संस्कार रूप से उसी मात्रा से मैल कटती है।

जैसे एक स्थान पर एक मन मैल लगी हुई है यदि
कोई मनुष्य नाखून से, अथवा हाथ से उसे खुरचता है
और बड़ी सख्त होने के कारण एक रत्ती मैल उतारता है
तो दूसरे देखने वाले को तो निरन्तर वैसी ही मनभर मैल
दीखेगी, जब तक कोई विशेष भाग उसका कटा हुआ
प्रतीत न हो। ऐसे ही मन की मैल का हाल है। जन्म
जन्मान्तर की हजारों मन मैल लगी हुई है। अब इस
जन्म में जब मनुष्य प्रभु शरण में जाता है तो उसे थोड़े
से जप से रत्ती-भर मैल ही प्रतिदिन उतारेगा। फिर
दूसरे को क्या प्रतीत हो। परन्तु यह अवश्य समझना
चाहिए कि प्रभु का जप खाली नहीं गया। एक दिन
अन्तर प्रतीत होगा।

❖ ❖ ❖

तिथि २८-११-३५ शनिवार ३-१५ प्रातः

बुझारतें

(१) आंख की पुतली क्यों काली बनाई गई
अंग्रेजों की आंखें और बाल क्यों भूरे हैं ?

(२) जिस मनुष्य के बड़ी वृद्धावस्था (आयु) में भी बाल काले रहें, लोग उसकी प्रशंसा करते हैं कि इसके बाल अभी तक काले हैं। ६०—७० वर्ष का होगया। इसे शक्तिशाली जानते हैं। इसका भेद ?

(३) अति ठंडे पानी से मुख साफ करने से मनुष्य कह उठता है कि ओहो ! ऐसा ठंडा पानी है कि दांत गिरते हैं। यह क्यों ?

मन की उन्नति का साधन

(१) जैसे भूमि पर पड़ा मन का वजन मन से ही उठ सकता है, ३६ सेर से नहीं। ऐसे ही पतित मन उस मन से उठ सकता है, जो पूरा मन होगा। मन के अनेक अर्थ हैं। मन का अर्थ गुप्त भी है और मनुष्य के मन को चित्रगुप्त (C.I.D.) भी शास्त्रों ने कहा है। इसलिये मनुष्य अपने पतित मन को C.I.D. बनकर ही ऊंचा कर सकता है। इसके दोष दूर कर सकता है। जब तक इस मन की जांच पड़ताल क्रियाओं और स्थितियों को मनुष्य C.I.D. की तरह नहीं देखेगा उसका दोष दूर नहीं होगा।

जाप में एकाग्रता

(२) एक वृक्ष के बड़े मोटे और सख्त तने को यदि कुल्हाड़े से मनुष्य काटने लगे तो पहले कई दिन तो मालूम ही नहीं होगा कि कुल्हाड़े ने कुछ किया भी है। क्योंकि कुल्हाड़ा कभी किसी स्थान पर पड़ता है, कभी किसी स्थान पर। परन्तु जब एक ही स्थान पर निरंतर पड़ने लग जाता है तब इसमें प्रभाव होता प्रतीत होता है। ऐसे ही मन की कालिमा रूपी मोटे और सख्त तने को नाम जप के कुल्हाड़े से काटने पर पहले कुछ मालूम नहीं होगा। जब कभी इधर पड़ा कभी उधर। परन्तु जब एक ही स्थान पर (एकाग्रता से) पड़ेगा तब कटना शुरू होगा। दूसरी विधि यह है कि आराकश जब उसे अपने चरणों में ले लेते हैं तो वह एक धार और एक स्थान पर रगड़ लगाने से शीघ्र उसे दो टुकड़े कर देते हैं। ऐसे ही यदि मनुष्य अपने मन की स्याही को शीघ्र दूर करना चाहे तो एकान्त स्थान, गुरु या महात्मा के चरणों में, सत्संग स्वाध्याय की शरण लेकर अपनी स्याही शीघ्र दूर कर सकता है। ये आराकश हैं।

भक्ति से सत्कर्म कराने की सामर्थ्य

(३) कई बाबू लोग कहते हैं कि परमात्मा की भक्ति

की क्या आवश्यकता है, यदि हम नेक काम करें, असली काम तो (Practical) ही है। वे बेचारे पढ़े लिखे होकर भी भूल जाते हैं कि गुण सर्वदा गुणी के साथ रहता है, अलग नहीं होता। नेकी परमात्मा के बिना और कहीं से नहीं आती।

नेकियों का स्रोत परमात्मा ही है। मैं कहूं कि मेरी खेती को पानी इस खाल का लगता है। नदी से मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं, तो यह भूल ही है। खाल का पानी उसी नदी से आरहा है। यह खाल तो नहर से आया और वह नदी से आई। यदि नहर सूख गई तो खाल खेत को कैसे पानी देगी ? खेती भी सूख जाएगी। जिनका सम्बन्ध (Direct) सीधा नदी से है। उनकी खेती सदा हरी भरी रहती है इसलिये नेकियों के स्रोत (प्रभु) से सम्बन्ध जोड़ना भी आवश्यक है। बल्कि जो नेक काम करता है वह भी प्रभु की भक्ति से बाहर नहीं है।

भक्ति से निश्चन्तता

नदी के संग की भूमि को पानी देने की चिन्ता नहीं रहती। वह सदा इस नदी से तर रहती है। सीधा भगवान् से सम्बन्ध जोड़ने और उसकी भक्ति करने से कर्मरूपी बीज बोकर निश्चिन्तता हो जाती है। जिन भूमियों का सम्बन्ध खालों से है इनमें हल बाही और बीज बोने के

अतिरिक्त पानी देने की चिन्ता रहती है। देखभाल करनी पड़ती है। इससे ममत्व बढ़ता है। परन्तु भक्ति करनेवाला मनुष्य जो कर्म करता है वह प्रभु की कृपा जानकर करता है। निष्काम कर्म करता है। उसी के आश्रय करता है।

तिथि २६—१२—३५ इतवार ५—३० प्रातः

(१) पशु दिन रात खाता है कभी दांत या मुख साफ करने के लिये कुल्ला नहीं करता। परन्तु मनुष्य जब—जब खाता है दांत और मुख साफ करने पड़ते हैं।

संसार छिल्का, प्रभु अमृत रस

(२) पशु सब चीज छिलके सहित खाता है। मनुष्य छिलका उतारकर रस लेता है। यह संसार छिलका है और प्रभु ही उसमें रस है। इसीलिये मनुष्य के लिये आदेश का नमूना है कि संसार के भोग को छिलका समझे।

सच्चा स्वाद

(३) पशु स्वाद के लिये नहीं खाता। इसलियें सब प्राकृतिक वस्तुओं को उसी रूप में खाता है। मनुष्य सब

वस्तुओं को अपनी विधि से स्वादिष्ट बनाकर खाता है। परन्तु जिह्वा के स्वाद के लिये ऐसा करता है। यदि मनुष्य उस स्वाद में आध्यात्मिकता का स्वाद लेवे तो वह पदार्थ उसके लिए अमृत रस हो जावे।

(४) कभी कोई वस्तु दो चार चीजों के मिला देने से स्वादी नहीं बनती, जब तक उसकी देखभाल न की जावे। वृत्ति एकाग्र न की जावे। इसलिये मनुष्य को सच्चा स्वाद वृत्ति की एकाग्रता में होता है।

८।। बजे प्रातः

प्रभुप्राप्ति हर अवस्था में

पर विशाल और हर्षित हृदय चाहिये। आनन्दस्वरूप भगवन् ! किस भान्ति तुमको पाऊं ? जो वस्तु जिस रूप (अवस्था) में होती है उसे उसी अवस्था का बनकर लेना पड़ता है अर्थात् पृथ्वी पर टींडे, कद्दू, गाजर, मूली लगी हुई है तो खड़े–खड़े कोई मनुष्य उसको नहीं पा सकता। पृथ्वी पर बैठकर ही उनको तोड़ सकता है परन्तु खजूर या आम हो जो कि ऊंचे हैं, फल जिनका ऊपर है, नीचे बैठकर नहीं ले सकता। ऊपर ही चढ़ना पड़ेगा और संगतरा या बैंगन–भिंडी आदि के लिये ऊपर चढ़ने की आवश्यकता नहीं है, खड़े–खड़े ही ले सकता है। ऐसे ही

परमात्मा जिस अवस्था में है उसी अवस्था में लेना पड़ेगा। प्रभु की आनन्द की अवस्था है तो मनुष्य को पूजा और भक्ति के समय हर्ष और प्रसन्नता से हृदय भर लेना चाहिये। मृतक हृदय शोक–आतुर मनुष्य प्रभु को कैसे पायेगा ?

वायु को मनुष्य खड़े, बैठे, लेटे हर अवस्था में ले सकता है परन्तु नाक खुला चाहिए। ऐसे ही प्रभु को भी हर अवस्था में पा सकता है परन्तु हृदय द्वार खुला चाहिये। हृदय द्वार तब खुलता है जब अलायश (लिप्तता) से पाक (शुद्ध) हो। जब मनुष्य हर्ष में होता है तब मनुष्य काम क्रोध लोभ मोह अहंकार की झपट से पाकमुक्त होता है। जब तक इनमें से कोई वस्तु मन में रहेगी तब तक हर्ष या आनन्द कभी नहीं समा सकेगा और प्रभु को भी नहीं पा सकेगा।

तिथि २–२–३६, गुरुवार ७–१० प्रातः

याचक को प्रसन्न करो, परन्तु कैसे ?

हे मेरे दया के भण्डार प्रभो ! मुझे बहुत बार लज्जा आती है जब कोई मनुष्य लाचार विवशता का रूप बना

याचक के रूप में कुटिया पर आकर अथवा चलते–चलते मार्ग में तेरे नाम पर याच्ञा कर देता है कि "प्रभु के वास्ते" मैं निर्धन हूं मुझे........दो। कभी तो लाचार विवश की मनमांगी वस्तु मेरे पास नहीं होती, कभी मेरा दिल नहीं करता और पश्चात् मैं पछताता हूं कि तू भी तो प्रभु आश्रित और वह लाचार भी तेरी भांति प्रभु आश्रित है और तेरे ही प्रभु का नाम लेकर अपनी अधिकारिता जतला अपना हक मांगता है। तूने क्यों नहीं दिया ? जब तेरे पा भी था।

भगवन् ! अनेक बार ऐसा हो जाता है और मैं डावांडोल हो जाता हूं। मेरी बुद्धि मुझे कोई मार्ग नहीं दिखाती। मैं आपके ही आश्रित हूं। कृपा करो। मेरा मार्ग प्रदर्शन करो। प्रभुभक्त प्रभु के नाम पर बिका हुआ होता है। उसका शरीर, उसका मन, उसकी आत्मा प्रभु के नाम पर अर्पण होती है। जैसे देशभक्त का तन मन धन सब देश–अर्पण होता है। हे सविता देव प्रभो ! मेरा तो पुनः कोरा जीवन हुआ। न तो मैं किसी समाज के काम आया, न किसी जाति को दिया, न देश पर मर मिटा, न तेरे नाम पर अर्पण हुआ। जब एक तांबे का पैसा देने से भी कतरा गया तो मेरा फिर कैसा पूजन भक्ति ? तुझे क्या प्रतीत होता होगा जब मैं तेरे नाम की ओट तेरे नाम का

आश्रय लेकर याचक से कान अनसुने, और मुख मोड़कर चल देता हूं। आज तो प्रभु तेरे चरणों में बैठे मुझे यह बात अचानक अखरी और उभर रही है। जब पास वस्तु नहीं होती और कोई याचक मांगता है तो शर्म आजाती है कि मेरे पास नहीं। मैं याचक को खाली भेज रहा हूं। परन्तु जब पास होने पर कतराता हूं तो बाद में लज्जा आती है। मेरी गायत्री (इष्ट) के सविता देव गुप्त प्रेरक प्रभो ! मेरा मार्गप्रदर्शन करो। मेरा मार्ग संरक्षण करो।

यह लज्जा झूठी लज्जा है। अपने मन से उठ रही है। अपनी Position (हालत) के अहंकार की लज्जा है कि मैं प्रभु आश्रित हूं। और फिर प्रभु की वस्तु को प्रभु नाम के आश्रयवालों को नहीं देता अथवा मेरे दर से याचक खाली जारहा है।

प्रभु आश्रित की निशानी (चिह्न) है प्रभु के अतिरिक्त और किसी से न मांगना, मुख से न मांगना, हाथ से न मांगना, आंख से न मांगना। प्राण से श्वास से न मांगना,अपितु संकल्प से भी न मांगना। यह संकल्प भी न करना कि अमुक मनुष्य मुझको ला देवे। उत्तम सच्चा प्रभु आश्रित तो वह है जो छोटे बालक की भांति कोई इच्छा प्रकट नहीं करता। वह इच्छा ही नहीं करता माता

अपने आप उसकी आवश्यकताओं, इच्छाओं की समय पर सुधि लेती और देती है।

मध्यम प्रभु आश्रित वह है, जो बड़े बच्चे की भांति सब कुछ अपनी माता से मांगता है और माता उसे उचित वस्तु अवसर पर देती है और कभी इन्कार भी कर देती है। परन्तु बालक दोनों में सन्तुष्ट रहता है। माता की इच्छा को अपने लिए उत्तम और उपयुक्त समझता है। ऐसे ही आश्रित। परन्तु जैसे कोई–कोई बालक अपनी मांग न मिलने पर रोता दुःख करता और हठ करता है, मां उसे पूर्ण तो कर देती है परन्तु बालक का संस्कार बिगड़ जाता है। ऐसे ही आश्रित का भी बिगड़ जाता है।

अधम आश्रित वह है तो इस बालक की भांति जो अपने माता पिता के सम्बन्धियों, मित्रों के पास जाता है। इस इच्छा (भाव) से कि वे इसकी इसके माता पिता सम्बन्ध पर खिलाएंगे, पिलाएंगे पैसे देंगे।

निकृष्ट और नीच आश्रित वह है जो अपने माता पिता के सम्बन्ध पर मांगते हैं और लोक लज्जा से उनको मिल जाता है। दानी लोग दे देते हैं। यह दर्जा आश्रित का अपने आश्रयदाता को बदनाम करनेवाला होता है। ये प्रभु आश्रित नहीं होते। ये ईर्ष्यालु, लोभी, आलसी, कामचोर, देश के लिए बोझ तथा अपने भविष्य

को धूलि में मिलानेवाले बजाए आश्रित के वे भिखारी कहलाते हैं। किसी की दृष्टि में मान की नजरों से नहीं देखे जाते।

हां इनसे कटुवचन से इन्कार करना अथवा बोलना तो एक पाप खरीद करना है परन्तु न देना, इनकी मुखमांगी वस्तु को जो इससे किसी दूसरे उत्तम काम में लगने की सम्भावना से रखी हुई है, पाप नहीं। लज्जा नहीं करनी चाहिए। प्रयत्न करो कि कोई ऐसा याचक तुमसे खाली न जाए। ऐसा भूखा–भूखा न जाए जो तुम्हारा प्रश्न सुलझाने आया हो तथा मैं इसी रूप में बस रहा हुआ हूं। इसलिए पहिचान न कर सकने के कारण मेरे भक्त किसी को खाली न भेजते थे। धन नहीं तो अन्न, अन्न नहीं तो छोले, छोले नहीं तो पानी, पानी नहीं तो मधुर वाणी से याचक को प्रसन्न करते थे तथा जब वस्तु ही पास नहीं तथा तुम जो रखते नहीं। मांगनेवाला भिक्षुक है, तो भिक्षुक को किसी और स्थान से मिल ही जावेगा। हां, समझो, कि भगवान् परीक्षा ले रहे हैं। भारी भूल है। भगवान् अपने भक्त की ऐसी परीक्षा नहीं करता। जब उसे विदित है कि यह वस्तु इसके पास नहीं भक्त तो भगवान् की परीक्षा भले करे परन्तु भगवान् तो तब करे जब वह देवे और फिर अपने लिये मांगे। जब

माता–पिता अपने बालक की परीक्षा लेते हैं। उसको मिठाई दी, पैसा दिया, पुनः हाथ पसारकर मांगा कि मुझको भी दो। भगवन् तो वास्तव में माता–पिता का स्वरूप है। भक्त और भगवान् का नाता माता और पुत्र का रहता है।

तिथि ५–१–३६ रविवार ६ बज़े प्रातः

मन और आत्मा का आनन्द

१ प्राकृतिक वस्तु से मन को आनन्द।
२ नाम जपन और मनन से आत्मा को आनन्द।

मनुष्य की चक्षु, नाक, कान, मुख और त्वचा ये सबके सब किसी न किसी रूप में मनुष्य को आनन्द देते हैं परन्तु आंख, नाक, कान, उपस्थेन्द्रिय आदि का जो आनन्द है वह प्राकृतिक आनन्द को दिला सकता है। क्योंकि प्रकृति और जीव में अन्तर है इसलिए सब प्राकृतिक वस्तुएं मन को आनन्दित करती हैं जीवात्मा को नहीं, तथा मन चञ्चल है इसलिए वह आनन्द भी चञ्चल रूप में रहता है। एकरस नहीं रह सकता। एक वाणी ही है जो बेफासला (समीपतर) होकर आनन्द दिलाती है जब तक किसी वस्तु का जिह्वा से अन्तर है तब तक

जिह्वा आनन्द नहीं ले सकती। न मन और आत्मा को आनन्द आ सकता है। जब कोई भी पदार्थ उससे युक्त होजातां है तब स्वाद आता है। आंख, नाक आदि बाहिर की इन्द्रियां हैं। इसलिये बाह्य पदार्थ का आनन्द ले सकती हैं।

परमात्मा अन्दर है। इसलिए जिह्वा से उसका आनन्द मिल सकता है। जैसे पदार्थ का स्वादयुक्त होने से मिलता है ऐसे ही प्रभु नाम जिह्वा से युक्त हो जाने से ही वास्तविक रस और आनन्द दे सकता है।

(२) आंख, कान खुले रहें तो बाह्य सौंदर्य राग स्वर और सुगन्ध का आनन्द आता है। मुख बन्द हो जाए तो रस का स्वाद आता है मुख खुला रहे तो स्वाद नहीं आयेगा। इसलिए परमात्मा का स्वाद लेने के लिए जिह्वा से प्रभु नाम को युक्त कर दिया जावे और मुख, होंठ बन्द कर दिए जावें, तो खूब आनन्द आता है। यही नाम जप की श्रेष्ठ विधि है।

❖ ❖ ❖

तिथि ७—१—३६ मंगलवार—१२—४५ दोपहर

गृहस्थी और विरक्त के आनन्द में भेद

परमात्मा को प्यारा वही लगता है जो उसके भेष में उसका अनुकरण करता रहता है। इसलिये गृहस्थी ही

इसका आदर्श है। परमात्मा आनन्दस्वरूप हैं, गृहस्थी के कार्यव्यवहार उसको आनन्द देनेवाले होते हैं। गृहस्थी की सब इन्द्रियां उसको आनन्द दिलाती हैं। गृहस्थी आजाद है और विरक्त बंधा हुआ है। गृहस्थी की आंख सौंदर्य देखकर उसे प्रसन्न करती है। कान राग रंग सुनकर, नासिका सुगन्ध सूंघकर, जिह्वा स्वाद लेकर, मुख बच्चों को चूमकर, वाणी बच्चों की स्तुति करके, हाथ और छाती जिसमें गले लगाकर, जननेन्द्रिय पत्नी संग से, मनुष्य को अति–अति प्रसन्न कर देती है। विरक्त और गृहस्थी की एक गुदा इन्द्रिय समान हैं, जो मल त्याग करती है। बाकी इन्द्रियों से गृहस्थी सदा आनन्द लेता है परन्तु विरक्त को सदा इन सब इन्द्रियों पर कोड़ा और अंकुश रखना पड़ता है। गृहस्थी को इसलिये अधिकार है कि वह प्रजापति है सब प्रजा की पालना करता है तथा विरक्त अपने उदर की पालना करता है और वह भी गृहस्थी के अन्न धन से, वह भिखारी है।

(२) गृहस्थी को आनन्द प्रकृति की उपासना से मिलता है जिनमें इन्द्रियां साधन हैं, इसलिये वह मोहताज है तथा विरक्त परमात्मा का उपासक है जिनका कोई आश्रय मध्य में नहीं। आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा

सम्बन्ध है इसलिए विरक्त आश्रय का मोहताज न बनने के कारण इन्द्रियों पर संयम रखता है तथा परम आनन्द को प्राप्त करता है। गृहस्थी को आनन्द क्षण में ही मिल जाता है इसलिये वह क्षण में ही मिट जाता है। विरक्त को आनन्द बहुत काल के पश्चात् मिलता है। इसलिए बहुत काल तक रहता है।

वैराग्य का साधन

(३) राग तथा वैराग्य का कारण एक ही वस्तु होती है। जैसे एक पुरुष के कुछ लड़के हैं। एक लड़का मर गया अब उसे दूसरे जीवितों से अधिक मोह होगया। जितने अधिक मरते गए, उतना अधिक बाकी से मोह बढ़ता गया तथा किसी को लड़के की मृत्यु से वैराग्य होगया। जितने मरे उतना अधिक वैराग्य होता गया।

(४) वैराग्य होता है वस्तु की वास्तविक के निश्चय हो जाने पर और राग होता है अज्ञान से। इसलिए ज्ञान ही वैराग्य का साधन है।

समय १–२५ दोपहर

जगत् जगत्

ओ३म् ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

जगत् वह है जो गति करे। संसार वह है जो चलता रहे। क्योंकि यह पांच तत्त्वों का बना हुआ है और पांचों तत्त्व गतिशील हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु चलते हैं। आकाश यद्यपि विभु है तथापि उसका विषय आवाज गति करती है।

जगत् की जबान नकारा ए खुदा

(२) जहां गति है वहां ध्वनि है, जहां ध्वनि वहां गति है। वायु चलती है तो ध्वनि करती है। अग्नि से ध्वनि निकलती है, पानी भी ध्वनि नाद करता रहता है। पृथ्वी की गति भी बहुत तीव्र है इसलिये हमको सुनाई नहीं देती अन्यथा ध्वनि होती रहती है।

भजन में मन के वचन

(३) प्रभु के भजन में मन जब तक चलायमान रहता है तब तक अन्दर ही अन्दर शब्द होता रहता है तथा इसीलिए चलायमान मनवालों के लिए वाणी द्वारा शब्द द्वारा प्रभु का भजन होता है तथा जब समाधि लग जाती है तब मन गतिहीन होजाता है। कोई ध्वनि अथवा जप, भजन, शब्द से नहीं होता। आकाश की भांति एकरस होजाता है।

❖ ❖ ❖

समय १—३५ दोपहर

वासी अन्दर **विरक्त का मकान** ताला बाहिर

गृहस्थी अपने मकान—महल और उसकी सम्पत्ति की रक्षा के लिये जब वह बाहिर जाता है तो बाहिर से ताला लगाता है परन्तु विरक्त इससे उलट करता है। वह जब अन्दर बैठता है ध्यान में, तो बाहिर से ताला लगा देता है (इन्द्रियों रूपी दरवाजों का) और जब वह बाहिर संसार में जाता है तो अन्दर से ताला लगा देता है। ताकि बाहिर की विषयवासनायें अन्दर दाखिल न हो सकें।

समय ७—१५ सायं

नामकरण संस्कार

११—१०१ जन्मतिथि

बालक का नाम क्यों ग्यारहवें दिन रखा जाता है? स्त्रियों का मासिक धर्म नक्षत्रों के हिसाब से होता है। नक्षत्र अट्ठाईस हैं। जितने दिन में किसी स्त्री को ऋतु आता है उससे दस गुणा दिनों में बालक का जन्म होता है और ऋतु की चार रातें छोड़कर बाकी बारह रात्रियों में गर्भ ठहर सकता है। पीछे नहीं। जैसा आयुर्वेदिक मत

में कुल सोलह रात्रि का कोर्स है, इसमें अष्टमी, ग्यारहवें, तेहरवें, चौदस, अमावस्या अथवा (पूर्णमासी) पंच रात्रि वर्जित हैं। १६–५ बाकी ग्यारह दिन रहते हैं। ऋतु के दस गुणा में जैसे बालक होता है ऐसे प्रसूता दसवें दिन प्रसूतागार से उठाई जाती है तथा ग्यारहवें दिन स्नान करती है। ग्यारह दिन के अन्तर में बालक गर्भ में आता है जब गृहस्थ होता है। इसलिये ग्यारहवें दिन की तिथि नामकरण के संस्कार की नियुक्ति की जाती प्रतीत होती है।

(२) ग्यारहवें दिन न कर सकने के पश्चात् १०१ दिन में क्यों ? पहले क्यों नहीं ?

(निष्क्रमण) संस्कार का समय पूरे तीन मास है इसलिए ३०×३=६०+११=दिन रखकर १०१ दिन नियुक्त हुआ प्रतीत होता है।

(३) यदि १०१ दिन में न हो सके तो एक वर्ष के पश्चात् उसी तिथि में जब बालक पैदा हुआ, क्यों नाम रखा जावे ?

सालगिरह (जन्मदिवस) मनाने की रीति थी। इसलिए जन्मगांठ के सम्बन्ध से इसी तिथि पर जबकि जन्म हुआ, स्मृति के रूप में किया जाना प्रतीत होता है।

❖ ❖ ❖

तिथि ६–१–३६ ३–४० प्रातः गुरुवार

सेवा वाणी द्वारा

सेवा अनेक प्रकार की है। सबसे पहली सेवा जो होती है वह वाणी द्वारा आचरण में आती है। जो सब सेवाएं करता है परन्तु वाणी की सेवा से कतराता है वह सेवनीय में कम स्थान पाता है।

४ बजे प्रातः

जीवात्मा मन्दिर के निर्माण में शाकौल का प्रयोग

एक निर्माता (मेमार) जब दीवार बनाता है अथवा कोई स्तम्भ बनाने लगता है तो बार–बार शाकौल से सीधाई को मापता रहता है कि कहीं से टेढापन, तिरछापन न आजावे तथा तराजू तोलनेवाला दुकानदार बार–बार अपनी दृष्टि नाभि (तराजू) में रखता है कि पासंग न पड़ जावे। परन्तु शोक है कि मनुष्य साधक जो अपने जीवन के मन्दिर को बनाना चाहता है प्रभुशक्ति के स्तम्भ को बनाता है। परन्तु बृद्धि के शाकौल (महात्माओं के जीवन रूपी) से नहीं मापता। कभी विचारता है कि कहीं से गलती तो नहीं कर रहा। निर्माता (मेमार) अथवा मजदूर

जरा भी आलस्य से काम करे तो स्वामी उससे क्रुद्ध होता है कि तू हरामखोरी करता है परन्तु साधक का मन जब सुस्ती करता है तो स्वामी (जीवात्मा) उसे कहता ही कुछ नहीं। फिर कैसे और कितनी देर लगेगी, मन्दिर बनाने में? भूल गया है। बाहिर के कामों में चतुराई बहुत दिखाता है, अन्दर से सोया हुआ है।

६ बजे लगभग प्रातः

कुवासना भयानक रोग है

जैसे एक बलवान् आदमी के जो व्यायाम करता है, शरीर में बड़ा बल होता है और जब उसे थोड़ासा ज्वर आजाता है, तो उसकी कुछ शक्ति उस ज्वर के निकालने तथा मुकाबला (प्रतिरोध) करने में व्यय हो जाती है तथा उसका मुखड़ा कमजोर दिखाई देता है तथा इसे इस कमी को पूरा करने के लिए नई शक्ति पैदा करनी पड़ती है।

ऐसे ही

ईश्वर का भक्त प्रभु भक्ति से बड़ा जोर पा लेता है जो शरीर में भी न समा सके। यदि उसे मध्य में कुवासनाएं न आ घेरें। इस बेचारे भक्त का ज़ोर कुवासनाओं को

दबाने में बार बार लगता रहता है, इसलिए उसकी शक्ति उधर व्यय हो जाती है तथा पुनः प्रतिदिन नए सिरे से उसे शक्ति (भक्ति से) पैदा करनी पड़ती है। नहीं तो प्रभु का भक्त थोड़े ही काल में मुक्ति को हाथ मार लेवे।

❖ ❖ ❖

तिथि १०—१—३६ शुक्रवार ६ बजे प्रातः

जितना उत्तम जीवन होगा उतनी अवनति का भय

(१) मनुष्य जब बहुत ऊपर चढ़ जाता है तो उसे नीचे की ओर देखने में भय लगता है ऐसे ही जो साधक ऊंची मंजिल में चढ़ता है तो वह भी डर के मारे कि कहीं गिरकर चकनाचूर न होजाऊं, नीचे (नीच विचार) नहीं देखता।

पहरेदार

(२) साधक और दुष्ट में क्या अन्तर है ? दुष्ट पर भी पुलिस का पहरा रहता है और साधक पर भी। (क) अन्तर यह है कि दुष्ट पर पहरा सरकार रखती है प्रजा की रक्षा के लिये और वह बदनाम होता है। परन्तु (ख) साधक पहरा अपनी पुलिस का अपने ऊपर करता है। इन्द्रियरूपी प्रजा के लिये और इसमें उसकी प्रशंसा

भी होती है। साधक के मन पर पहरा रहता है और दुष्ट के शरीर पर।

(३) दुष्ट की कुवासनायें नहीं दबतीं और साधक की कुवासनायें मर जाती हैं। (४) दुष्ट अवसर की प्रतीक्षा में रहता है कि पुलिस हटे और दुष्टता कर लूं। परन्तु साधक इस ताड़ में रहता है कि मेरी पुलिस हटने न पाये। (५) दुष्ट की पुलिस की वर्दी काली होती है और साधक की पोलिस सतोगुणी रंग की होती है। बुद्धि और भक्ति अर्थात् बुद्धि पोलीसमैन है और भक्ति उसकी वर्दी है।

तिथि १२–१–३६ ७ बजे प्रातः इतवार

तीन लोक और उनका सहारा

भौतिक-जगत्, आध्यात्मिक-जगत्, दैविक जगत्
पृथ्वीलोक सूर्यलोक अन्तरिक्ष लोक
शरीर आत्मा मन

मनुष्य का भौतिक, दैविक, आत्मिक तीन लोकों से सम्बन्ध है। देव लोक में तो वायु, अग्नि, जल सहारा हैं। संसार की स्थिति का, और भौतिक में (शरीर में) वात पित्त कफ सहारा है। शरीर का स्वास्थ्य और विकार इन

तीन पर ही आश्रित है तथा आध्यात्मिक जगत् में सूक्ष्म शरीर के लिये तर्क युक्ति (श्रद्धा) वाद ये तीन हैं। इनके सम रहने से बुद्धि ठीक रहती है। इनके थोड़ा अथवा बहुत होजाने से बुद्धि में विकार आजाता है।

वायु अग्नि जल को तो प्रभु ही ठीक रख सकते हैं। वही इसके परम वैद्यराज हैं। वात, कफ, पित्त के विकार के लिये वैद्य की आवश्यकता है तथा तर्कयुक्ति वाद के संसार सुधार के लिए गुरु की आवश्यकता है जो इसे अपनी सीमा पर रखे अथवा उपदेशक जो उसे ठीक करे। इन तीनों को ठीक करने के लिए यज्ञ ही एक औषधि है।

तिथि १३—१—३६ सोमवार लोहड़ी

सम्बन्ध का कारण त्याग और ग्रहण

आंख मुख के पाट खुलें और बन्द हों। परन्तु कान और नासिका के सदा खुले रहें।

बकरी के कान

परमात्मा ने प्राणियों का सम्बन्ध तो ऐसा एक दूसरे से बनाया था कि एक का त्याग और दूसरे का ग्रहण है तथा प्रकृति से बरबस आचरण में आता रहता है। परन्तु

मनुष्य न समझा। जब मनुष्य यह समझ जाये कि मेरा अपान वनस्पति का प्राण है और वनस्पति का अपान मेरा प्राण है। मेरा मल पृथ्वी और अन्य क्षुद्र जन्तुओं का जीवन आधार है तथा इसका त्यागा मल मेरा जीवन है। तो मनुष्य संकल्प से त्याग करेगा। संकल्प से किया हुआ त्याग यज्ञ कहलाता है और यज्ञ से अन्तःकरण शुद्ध सार्वभौम बन जाता है। हलवाइयों का घी अपने आप उड़ उड़कर आकाश में मेघ का कारण बन रहा है। परन्तु वह न तो उसे बन्द कर सकते हैं और न प्रसन्नता से भावना करके त्याग करते हैं।

तिथि १४–१–३६, ५–३५ प्रातः मंगलवार

(१) आंख के दो पाट, मुख के दो पाट हैं। कान और नासिका के पाट बन्द नहीं हो सकते तथा ये आंख और मुख के पाट दोनों खुलते और बन्द होते रहते हैं।

यह क्यों ?

(२) मनुष्य की आंखें ऊपर और मुख नीचे है। ऊपर से नीचे तक अर्थात् पृथ्वी नीचे और आकाश दोनों को बन्द करना या दोनों छोरों को मिला देने का नाम है। अन्तर्ध्यान क्रिया जाता है तब भेद प्रकट होता है। केवल

आंख, मुख, नासिका के बन्द करके बैठने से भेद प्रकट नहीं होते। अपितु पृथ्वी, आकाश के तुल्य करने से खुलते हैं।

(३) प्रायः पशुओं के कान खड़े हैं परन्तु बकरी के नीचे लटके हुए क्यों ? परमात्मा की महिमा अद्‌भुत है। बकरी पशु होकर मनुष्य की भांति "मैं मैं" बोलती है। "इस मैं के बदले कान से पकड़ी जाती है। मनुष्य भी इसी से कान मरोड़ीवाला कहलाता है।

तिथि १५-१-३६, ६५५ प्रातः बुधवार

मैं मैला तुम उज्ज्वलकर्ता

माता जैसे अपने पुत्र की मैल को आप साफ करती है। बच्चा रोता रहता है तो भी वह उसकी मैल को बड़े प्यार और चाह से साफ करने में अपना सुख मानती है तथा उसे उज्ज्वल करके स्वयं प्रसन्न होती है ऐसे ही भगवान् भी अपने प्यारे भक्त की मैल आप दूर करते हैं। चाहे भक्त न भी चाहे परन्तु भगवान् उसे साफ करके ही, उज्ज्वल करके ही प्रसन्न होते हैं और आशीर्वाद भी देते हैं।

तिथि १७–१–३६, ६–३५ प्रातः शुक्रवार

तीन प्रकार के नेत्र-रजोगुणी, सतोगुणी, तमोगुणी

कुछ एक मनुष्य बाहिर के नेत्रों से बाहिर ही देखते हैं। बाहिर ही साजोसामान, ठाठ बाट को देखकर प्रभावित होते हैं। ये लोग रजोगुणी तथा व्यावहारिक वैश्यवृत्ति के होते हैं। दूसरे मनुष्य बाहिर के पदार्थों और प्राणियों को अन्दर की आंख से देखते हैं और वैसे प्रभावित होते हैं। ये लोग सतोगुणी, ब्राह्मणवृत्ति के होते हैं। तीसरे मनुष्य अन्धनेत्र की भांति न बाहिर से देखते हैं न अन्दर से, अपनी ही आकृति प्रकृति रखते हैं। वे तमोगुणी मनुष्य शूद्रवृत्ति के होते हैं।

२–३० पश्चात् दोपहर

परीक्षा

भगवान् जब विश्वम्भर तथा विश्वपालक हैं तो क्यों दुष्काल कर देते हैं। क्यों जल से शून्य कर देते हैं। ऐसे अवसर पर सभाएं और लोग प्रसन्नतापूर्वक सेवा के लिए क्यों दौड़ते हैं। क्या भगवान् स्वयं नहीं कर सकता।

यह प्रभु की अपार कृपा है अपने जीवों पर कि समय–समय पर ऐसा कर देने से वह अकड़े हुए, ऐंठ में

बैठे, भोले मनुष्यों को स्मरण कराता है तथा लोगों को सम्बन्ध और धर्म सिखाता है। भगवान् ऐसे अवसरों पर अधिकारी चुनते हैं। सभी लोगों के भाग्य में सेवा नहीं होती—यह किसी किसी भाग्यवान् के भाग में होती है और ऐसा मनुष्य इस मार्ग में उत्तीर्ण होने से ऊंचे पद को प्राप्त कर लेता है।

जहां अन्न का अभाव है वहां भगवान् अन्न के द्वारा सेवा चाहते हैं। जहां जल का अभाव है, वहां जल के द्वारा। जहां वस्त्र का अभाव वस्त्र के द्वारा। जहां आश्रय का अभाव है, वहां आश्रय द्वारा। इसी अवसर पर ही सेवा करनेवाला मनुष्य भगवान् की सच्ची प्रसन्नता को प्राप्त करता और प्रभु के गुण दीन दुःखी के सहायक गरीब निवाज़, पोषक रक्षक की पदवी पाता है।

तिथि १६—१—३६, ५—३० बजे प्रातः रविवार

आसन की आवश्यकता

लोटे को किसी ने पानी से भर दिया परन्तु लोटे की bottom (तल) सम नहीं तो वह जिधर को ढलान देखता है, उधर ही गिर पड़ता है। पानी निकाल गिरा

देता है। पानी लोटे में सुरक्षित तब रह सकता है जिसका तल सम है। ऐसे ही उपासक के अन्दर भक्ति तभी टिक सकती है जब वह आसन ठीक लगा सकता हो। जिसका आसन ही ठीक नहीं, जो मन को स्थिर नहीं कर सकता, उसमें कैसे भगवद् भजन ठहरेगा।

८ बजे प्रातः

अवगुण हारा मैं, कि पशु

मनुष्य सब प्राणियों से इसलिए सबसे बड़ा होने का मान करता है कि वह समझता है कि मुझ में सब कुछ है (दृश्य) सब प्राणी एकत्र होरहे हैं तथा हर एक अपने अपने गुणों का वर्णन करके अपने आप को बड़ा बतला रहा है। मनुष्य बोला कि तुम सबमें एक एक गुण है और मुझ अकेले में तुम सबके गुण हैं। भार उठानेवाले बोले, हम बोझ उठाते हैं यात्रियों का। मनुष्य बोला तुम केवल मनुष्यों का बोझ उठाते हो मैं मनुष्यों और पशुओं का, अपना अपने कुटुम्ब, अपने समाज, अपनी जाति, अपने देश का बोझ उठाने वाला हूं। बैल आदि बोले, हम अन्न पैदा करते हैं। मनुष्य बोला, तुम एक खेत का अन्न पैदा करते हो मैं कई देशों का अन्न पैदा करता हूं। घोड़ा

हाथी, हरिण बोले हम तीव्र गति में दौड़ते हैं तथा राजा की सवारी हैं। युद्ध के काम आते हैं। मनुष्य बोला यह शरीर भी जीवात्मारूपी राजा की सवारी है तथा तुम तो कभी कभी संग्राम में जाते हो यह क्षण क्षण युद्ध कर रहा है। हरिण से भी बहुत तीव्र दौड़ता है। अब अवगुण वाले भी बोले लोमड़ी ने कहा में मक्कार हूं। मनुष्य बोला तुम पशुओं से मक्कारी करती हो, मैं पशु और मनुष्य दोनों से करता हूं। तुम्हारा पता लग जाता है, मेरा पता नहीं लगता। कुत्ता बोला मैं खाकर भौंकता हूं। मनुष्य बोला तुम केवल भौंकते हो, मैं काट भी लेता हूं।

गधा बोला मैं हठी हूं। मनुष्य बोला तुम मार खाने से हठ छोड़ देते हो, मैं फांसी पर चढ़कर भी नहीं छोड़ता। कव्वा बोला मैं बोलता नहीं थकता। मनुष्य बोला तुम थोड़ा बोलते हो, मैं अधिक बोलता हूं। गिद्ध चील बोले हम मुरदार खाते हैं। मनुष्य बोला तुम मुरदा को खाते हो, मैं जीवितों को खा जाता हूं। शेर बोला मैं राजा हूं। मनुष्य बोला तुम जंगल के राजा हो। मैं राजा हूं मनुष्यों का। तुम पशुओं को खाते हो मैं पशुओं और मनुष्यों दोनों को खाता हूं।

जितने भी गुण अवगुण दूसरे प्राणियों के हैं, सबमें

अकेले–अकेले के अपने–अपने हैं। परन्तु मनुष्य में सबके सब प्राणियों के एक ही अकेले हैं।

१।। बजे पश्चात् मध्याह्न

भक्त ! परोपकारी बन या कमा के खा तथा भक्ति कर

जो भक्त सारा दिन प्रभु की भक्ति जप आदि में लगा रहता है तथा और कोई उपकार अथवा कर्म नहीं करता, नाही पढ़ाता, उपदेश कर सकता है, न लोगों को किसी मार्ग पर लगा सकता है, तथा यह विचार करता है कि मैं प्रभुभक्ति में लगा हुआ हूं तो सबसे उत्तम काम है, भोजन तो अच्छे से अच्छा प्राप्त हो जावेगा परन्तु इसके अपने पल्ले बहुत थोड़ा पड़ेगा। जैसे मजदूर के पल्ले अथवा सेवक वेतनहार के पल्ले बहुत कम पड़ता है तथा उसकी सारी कमाई उसके स्वामी भोजन देनेवाले की होती है। ऐसे इस भक्त की भी अपने भोजन के बदले चली जाती है। तुच्छ मजदूरी उसके भाग में रहती है। इसलिये प्रभुभक्त को होशियार रहना चाहिए, उसे स्वामी बनना चाहिए। दूसरी बार (फसल) उठानी चाहिए। न कि एक मुजाएरा, जिसका कर लगान भी और ले जावे, लागी

लागा ले जावें तथा आपको बीज भी न बचे। हां जो प्रभुभक्त भक्ति के साथ परोपकार करता है, उसकी भक्ति नहीं बिकती। उपकार के बदले रोटी मिल जाती है, भोग कर्म से बनता है। कर्म करके जो मनुष्य भोग लेता है, उसकी भक्ति सुरक्षित रहती है तथा जो कर्म नहीं करता उसकी भक्ति फिर कर्म बन जाती है, भक्ति नहीं रहती।

४ बजे सायं

वाचिक जाप मानसिक जाप में बहुत अंतर

वाणी और मन में इतना अन्तर है जितना भूमि और आकाश में। बाहिर की वाणी से जप करते हैं, रस नहीं आता, बाहिर की वाणी बाहिर के पदार्थों का रस ले सकती है। प्रभु नाम—रस तो अन्दर की जिह्वा जो वाक् की वाक् है, ले सकती है। यही कारण है कि हमारी जिह्वा से की हुई भक्ति हमें रसपान नहीं कराया करती। जैसे कहावत है कि मिश्री मिश्री कहने से मुंह मीठा नहीं हो सकता। ऐसे ओ३म् ओ३म् कहनेमात्र से इसका गुण भी नहीं आ सकता। पहले मैं कहता था कि यह उदाहरण

गलत है क्योंकि मिश्री और वाणी में व्यवधान (फासला) है परन्तु जिह्वा और राम नाम में फासला नहीं है। वह वाणी में भी व्यापक है परन्तु आज पता मिल रहा है कि नहीं, यह जिह्वा मन से फासले पर है, जो मन प्रभु का निवास स्थान है। प्रभु सर्वव्यापक है परन्तु जब तक उपासक का विचार और उपासना व्यापक नहीं बन सकता तब तक उसकी जिह्वा और मन में फासला है।

रात्रि रक्षा

प्रभु आश्रित ! प्रभुपुत्र बनकर तो तमाम संसार की देवियों को पुत्री कहता है और जिसके विश्वास पर अर्थात् प्रभु के नाम के विश्वास पर कि यह महात्मा प्रभु का पुत्र है, उसे पिता पिता के नाम से खुले शब्दों में पुकारती है और कोई घूंघट परदा नहीं निकालती है। यदि ऐसा प्रभुपुत्र रात्रि को स्वप्न के समय जबकि उसके अन्तःकरण में न सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रमा का, न लैम्प का, स्वयं प्रभु की अपनी सामर्थ्य की रोशनी है तथा उस उत्तम प्रकाश में ही प्रभु छिपे हुए अपने पुत्र के पास आते हैं। वह अपने को अकेला जानकर किसी भी देवी पर बुरी दृष्टि से, कांणी–आंख से देखता है तो वह अपने

पिता के नाम को कलंकित करता है। अपने दिव्य इष्ट को बट्टा लगाता है। प्रभु प्रीतम का अनादार करता है। प्रभुपुत्र को आर्य कहते हैं। वेद में आर्य बनना, आर्य कहलाना सौभाग्य है, इस की रक्षा आवश्यक है।

❖ ❖ ❖

तिथि २१–१–३६ प्रातः ४–५ मंगलवार

असुर को पाप से लज्जा क्यों नहीं आती ?

मनुष्य की आंख ज्ञान–इन्द्रियों को क्यों नहीं देख सकती ?

पशु केवल पांव को देखता है

(१) मनुष्य की आंखें अपने शरीर को गरदन से नीचे सब अंग देखती हैं। पशु अपनी आंखों से अपने किसी भी अंग को पांव के अतिरिक्त नहीं देख सकता। परमात्मा की अति कृपा है कि मनुष्य अपने कर्म को अपनी आंख से देखे और ज्ञानेन्द्रियों को नहीं देख सकता। इसलिये कि वह अपने ज्ञान से अज्ञानी है अन्यथा उसे अभिमान आजाये। अन्य साधन द्वारा अर्थात् शीशे से उसे ज्ञान इन्द्रियों का ज्ञान होता है कि कैसी हैं। ऐसे ही अपने ज्ञान का दूसरे सामने के ज्ञानी से उसे अपना विवेक हो सकता है। जो ऐसा नहीं करता वह पशु समान है।

(२) असुर पाप से लज्जा क्यों नहीं करता ? धनी मनुष्य के कपड़े को यदि टांकी लग जाए या वह फटा हुआ या मैला कपड़ा पहने तो उसे लज्जा आती है। इसी प्रकार आध्यात्मिक रूप में जो प्रभुभक्त है, नेकी का धनी है, उसे थोड़े से पाप अथवा कुवासना से भी लज्जा आती है। परन्तु जो असुर है, प्रभुभक्त नहीं, वह निर्धन की भांति लज्जा नहीं खाता।

तिथि २५–१–३६, ३–५० प्रातः शनिवार

दो दो अंगों का रहस्य

मनुष्य के शरीर की बनावट ऐसे है। दाएं का बाएं से बाएं का दाएं अंगों से घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा वह एक दूसरे के आधार हैं। दो आंख, दो नाक, दो कान, दो जिह्वा (वाक्, वाक्) दो हाथ, दो टांग, दो नीचे की मल इन्द्रियां, एक संसारी विहारी है दूसरी परलोक की है।

लोक परलोक का आपस में ऐसा सम्बन्ध है। जो मनुष्य इस रहस्य को समझकर काम करता है, उसका हर एक अंग कर्म में, ज्ञान में, उपासना में (बुद्धि) (चित्त) मन (अहंकार) (अन्तःकरण) एक दूसरे की रक्षा और सहायता करते हैं। ऐसा मनुष्य जब व्यवहार करता है तो

एक आंख व्यवहार में दूसरी परमात्मा में लगकर व्यवहार को श्रेष्ठ बना देती है। दो कान, एक कान संसार में, दूसरा प्रभु दरबार में रहकर इसकी रक्षा करता है (ऐसे लोक में कमाई में, दान में)। जिन लोगों ने इस रहस्य को नहीं समझा, वे दोनों अंग संसार में ही लिप्त रखते हैं।

दायां संसारी है, बायां प्रभु का है, दायें में शक्ति अधिक है, इसलिये मनुष्य बाएं की कम चिन्ता करता है। दायां न हो तो कमजोर, अपाहज (अंगहीन) समझा जाता है। जो लोग बाएं अंगों से अधिक काम स्वभावतः कर सकते हैं उन्हें उनमें विशेषता होती है। यद्यपि लोग उन्हें (मायूब) दोषी सा गिनते हैं परन्तु वास्तव में वे दिल के बड़े मजबूत होते हैं, तुलना में साधारण दाएंवाले के।

❖ ❖ ❖

तिथि २५–१–३६, ८ बजे प्रातः सोमवार

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदम् अग्नये जातवेदसे इदन्न मम।

पांच की प्राप्ति

किसे हो ?

कैसे हो ?

"हम प्रतिदिन इस मन्त्र द्वारा पांच बार आहुति देते

हैं और पांच वस्तुओं की प्राप्ति की परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। यज्ञ के द्वारा जो वस्तु मांगी जाती है, वह अवश्य मिलती है परन्तु हम कोरे रह जाते हैं। क्या यज्ञ इष्टकामधुक् नहीं है ?

यज्ञ तो इष्टकामधुक् है परन्तु परमात्मा भी क्या करे, कैसे दे ? किसे दे ? कहां दे ? बच्चा रोरहा है, यज्ञशेष बांटा जारहा है, मुझे भी मिले, रोता हुआ कहता है। मुझे बहुत दो, थाली भरी दो। बांटनेवाले ने कहा, लो ! बालक ने हाथ किया उसको भर दिया परन्तु थाली नहीं दी। बच्चा रोता है सारी दो। हाथ इसका छोटा सा है। वह तो भर गया है, अब बांटनेवाला कहां देवे ? वह कहता है लो, हाथ में समाई नहीं। ऐसे ही प्रभु इस मन्त्र में मांगी हुई वस्तुओं का यज्ञशेष देने के लिए तैयार हैं परन्तु लेनेवाले के पास स्थान नहीं।

(१) प्रकाश मांगा—प्रकाश का स्थान है अन्तरिक्ष जो खाली हो। हृदय अन्तरिक्ष है, परन्तु वह खाली नहीं। द्वेष की अग्नि से पहले जल रहा है। अब प्रभु प्रकाश कहां प्रकट करें ?

(२) प्रजा मांगी—प्रजा के लिए स्त्री चाहिए और फिर पुरुष कैसे हो ? (प्राप्त करनेवाली) जया (जय को) जय को प्राप्त करनेवाली। जब संतान मांगी तो दोनों स्त्री

पुरुष पवित्र हों बलवान् हों, नीरोग हों।

(३) पशु मांगे—पशु के लिये स्थान हो और उसके लिये भोजन का सामान हो। यह धन आदि का काम है, धन मिलेगा पुरुषार्थ से। मनुष्य आलसी न हो, पुरुषार्थी हो। पशु में, चूहे से लेकर हाथी तक पशु हैं, परन्तु जिन पशुओं से मनुष्य की आत्मा का सम्बन्ध है अर्थात् जिसके सम्बन्ध से मनुष्य की आत्मा प्रयत्नशील बन सकती है वह पशु मनुष्य की दृष्टि में रहते हैं।

(४) ब्रह्मवर्चस मांगा—यह वस्तु सबसे कठिन है, यह मिलती है भक्ति से, ब्रह्म की समीपता से। भक्ति बिना ब्रह्मचर्य के नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य तो पहलवान भी रखता है, परन्तु ब्रह्मवर्चस उसमें नहीं आता। वेद में प्रार्थना की गई है—**तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।**.......यजु० अ० १९—मन्त्र ९।

एक तेज को प्राप्त करने के लिए पांच वस्तुओं का संग्रह पहले ही चाहिये। तेज मिलेगा वीर्य से। वीर्य मिलेगा बल से। बल मिलेगा ओज से। ओज का प्रकट रूप मन्यु है। मन्यु सहनशक्ति से, धैर्य्य से आता है। सात्विक आहार से ओज बनाया जाता है। ६० कतरा दूध से २ कतरा घी, ६० कतरा घी से एक कतरा रक्त, ६० कतरा रक्त से एक कतरा वीर्य और ६० कतरे वीर्य से

एक कतरा ओज बनता है। विषयवासनाओं का मुकाबला किए बिना (मन्यु) के द्वारा ओज उत्पन्न नहीं होता। इसलिये ब्रह्मवर्चस के लिए अति तपस्या की आवश्यकता है।

(५) अन्न मांगा गया है—यह पांचवीं वस्तु है। यही भोग है। मनुष्य इस भोग के लिए जो सबसे अन्तिम वस्तु है, जो अदृष्ट है और प्रभु ने अवश्य देना है। अपनी सारी आयु इसी में लगा देता है। बाक़ियों का विचार नहीं, जिससे मनुष्य का छुटकारा होना है।

यदि प्रकाश नहीं तो संतान किस काम की ? भोग में पड़कर आवागमन का चक्कर ही काटना पड़ेगा। यदि प्रकाश है, संतान नहीं तो पशु किसलिए ? दूध मक्खन किसके लिए ? संतान पशु हैं और ब्रह्मवर्चस नहीं तो बन्धन। यदि अन्न है और भक्ति नहीं है तो पशु से अधिक क्या मूल्य है ? ये सब कुछ कैसे हों ? "**इदम् अग्नये**, अर्थात् मैं प्रकाश मांगता हूं तो अपने लिए नहीं, प्रभु के अर्पण के लिए। संतान अपने लिए नहीं, प्रभु अर्पण के लिए। पशु, भक्ति, अन्न, सब **इदम् न मम**। सब भगवान् की पूजा के लिए मांगता हूं। ऐसा उपासक अग्निहोत्री कहलाता है।

❖ ❖ ❖

तिथि २८—१—३६ ६।। प्रातः मंगलवार

किरण के सात रंग

सात प्रकार की अग्नि सात प्रकार का यज्ञ

ब्रह्माण्ड में जैसे अग्नि और सूर्य के सात रंग होते हैं ऐसे शरीररूपी यज्ञशाला में सात प्रकार की अग्नि है। जिस जिसमें अग्निहोत्र किया जावे उस उसकी सफलता होती है। (१) जठराग्नि के लिये नियत भोजन, शयन, व्यायाम आहुतियां हैं। मेरी यह अग्नि ठीक प्रज्ज्वलित होजावे तो शारीरिक वस्तु की प्राप्ति होती है। (२) प्राण अग्नि—प्राणायाम की आहुति दी जाती है। इससे प्राण बलवान् होगा। (३) सूक्ष्म प्राण अग्नि अर्थात् (इन्द्रिय अग्नि) में हवन करने से हमें इच्छा संयम का और शब्द आदि विषयों का वसु प्राप्त होगा। (४) चित्त अग्नि—वृत्तियों की आहुति से वासना शुद्धि प्राप्त होगी। (५) मन अग्नि—विधिवत् यजन करने से बहुमूल्य विचारों का कोष मिलेगा। (६) बुद्धि अग्नि के पूजन से ज्ञान का दिव्य ऐश्वर्य मिलेगा। (७) आत्म अग्नि—योग संयम में सब प्रकार के कर्मों का हवन करने से या नानाप्रकार के यज्ञ करने से ऊंचे अध्यात्म ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

२६—१—३६ ५।। बजे प्रातः बुधवार

अवगुण कैसे जावें

(१) मनुष्य में त्रुटियां इसलिये बढ़ती हैं कि मित्र उसे त्रुटि की सूचना नहीं देता और शत्रु पर वह विश्वास नहीं करता। उनकी नहीं सुनता, उलटे उन पर क्रोध करता है। (२) दोष (त्रुटि) का शोधन मित्र ही कर सकता है, अथवा त्रुटिवाला मनुष्य त्रुटि निकालनेवाले को अपनी भलाई के लिये अच्छा हितैषी समझे, चाहे वह मित्र हो अथवा शत्रु। सबसे उत्तम सलाह देनेवाली तो अपनी आत्मा है। जिन साधकों की आत्मा उनके मनको हर समय त्रुटियों से सूचित करती रहती है अथवा आत्मा के लिए विवेक जिसे (Conscience) कहते हैं, ही सच्चा मित्र है।

अन्धा, अन्दरध्या, इन्द्रधा

(३) अन्धे की एकाग्रता शीघ्र हो सकती है। आज मैंने इसका खूब भान किया कि कैसे अन्धे आन्तरिक दृष्टि से सब वस्तुओं सुजाखों की भांति पकड़ लेते हैं तथा कैसे चलते हुए ठुड्डों ठोकरों से बचते हैं। उनकी वृत्ति इस काम में एकाग्र होती है तथा उसी एकाग्रता के अन्दर एक प्रकाश होता है जैसे मनुष्य आंख से देख रहा हो।

११।। बजे दोपहर

वसंत पंचमी वसु पंचम स्वर, पंचम तत्त्व

वसंत पंचमी का त्यौहार उत्तरायण काल के सबसे पहले शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। स्वरों में पंचम स्वर अधिक जोरवाला होता है। तत्त्वों में पंचम (५वां) तत्त्व पृथ्वी का है। वसन्त पृथ्वी पर प्रकट होता है। यह शब्द वसु+अन्त, जिसके अन्दर वसु रहते हैं। वसु किसे कहते हैं ? वसु धन को कहते हैं। वसु आठ हैं। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्र। इन सबका प्रकट रूप वसंत में हुआ। परमात्मा की सृष्टि में यह त्यौहार आदेश देता है वसंत ऋतु जो चैत्र और वैशाख में आने वाली होती है, इसका स्वागत करता है। जैसे किसी महाराजा अथवा शहनशाह का आना हो, तो उसके स्वागत के लिए कमेटियां बनाई जाती हैं। बदरियां बनाई जाती हैं। नानाप्रकार की प्रसन्ता के सामान किये जाते हैं। ऐसे ही वसंत ऋतु जो सबसे उत्तम श्रेष्ठ ऋतु है और जिसे गीता में भगवान् कृष्ण ने वसन्त ऋतु को "ऋतूनां कुसुमाकरः" कहा है और सब उत्पत्ति इसमें होती है। फल, फूल, वनस्पति के उगाव की ऋतु है। केसरी रंग के रंगे हुए फूलों की बहार लोगों के अन्तःकरण

में प्रसन्नता और मस्ती (आह्लाद) फैलाती है और प्रभु के प्राणियों में सर्दी का जो वास था, उसको अन्तः संदेश मिल गया तथा निर्धनों की आशा बंध गई। सूर्य के सात रंगों में पीला, केसरी रंग सबसे प्रथम रंग है। सोने का रंग भी पीला होता है, जिससे संसार का व्यवहार होता है। ब्रह्मचारी के वस्त्र का रंग पीला केसरिया होता है। कर्मकाण्ड का रंग भी पीला केसरी होता है। पृथ्वी और सूर्य इस समय अपना कर्म उपजाने का करते हैं। योग में प्रवेश करनेवाले इसी वसंत ऋतु में योग सीखते हैं। ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत भी इस समय में कराया जाता है। वसंत का छन्द गायत्री है। जो छन्दों में सबसे श्रेष्ठ और भक्तिप्रधान छन्द है।

तिथि ३०—१—३६, २ बजे दोपहर गुरुवार

सेवक सेवक का भेद

संसार में कुली से लेकर राजा पर्यन्त सब सेवक हैं। सेवा का शब्द छोटा है परन्तु अर्थ में बड़ा है। भंगी चमार से ब्राह्मण तक, प्रपोते से प्रपितामह तक सब सेवा करते हैं परन्तु सेवा सेवा में भेद है।

❖ ❖ ❖

अपनी सेवा

(क) जो सेवा किसी व्यक्ति के वेतन के बदले में की जाती है, वह सेवा मज़दूरी है अथवा अपने ही पेट के लिए की जाती है वह रोज़ी है। सेवक, मज़दूर अथवा नौकर या पेशावर कहलाता है। इसे सैल्फ सर्विस (Self service) का नाम दे दीजिए यह (Labour livelihood) आजीविका के नाम से पुकारी जाती है।

जन सेवा

(ख) जो सेवा (Public service) वेतन लेकर तो की जाती है परन्तु वह सेवा किसी विशेष के लिए नहीं, साधारण के लिए है तथा इससे उनका जीवन सुधरता है। कार्य संवारता है। तो वह सेवा मज़दूरी की नहीं अपितु वह सेवा आदर के योग्य है। वह सेवक मान पाता है तथा बुजुर्ग अथवा अफसर कहलाता है। इस सेवा को लोकसेवा (पब्लिक सर्विस) का नाम दिया जा सकता है। यह जनसेवा है।

(ग) जहां सेवा निष्काम रूप से होती है वहां सेवादार सरदार अथवा स्वामी कहलाता है। यह यज्ञ का रूप है। एक प्रकार की देशभक्ति है। यह सेवा पूजा है और सेवा करनेवाला पूजनीय, पुरोहित और पितर कहलाता है।

सेवा श्रम (मज़दूरी) के रूप में, अधम सेवा व्यापार

के रूप में है, तथा अधिक लाभ देकर जिसमें बदल लेते हैं वह मध्यम सेवा है, लेने का विचार आए बिना जो सेवा की जाती है, वह उत्तम सेवा कहलाती है।

तिथि ३१–१–३६, ५–४० प्रातः शुक्रवार

कर्म ज्ञान और उपासना

पिण्ड की वेधशाला — खुर्दबीन और दूरबीन (अणुवीक्षण और दूरवीक्षण)

पदार्थ को आँख के शीशे से देखा जाता है। दूर की वस्तु को समीप दिखलाना दूरबीन शीशे का काम है। अत्यन्त छोटी वस्तु (सूक्ष्म वस्तु) को बड़ा दिखलाना खुर्दबीन शीशे का काम है। ऐसे ही मनुष्य के अन्दर दो शीशे हैं, बुद्धि में ज्ञान का, और मन में प्रेम उपासना का शीशा जड़ा हुआ है। ज्ञानरूपी दूरबीन से मनुष्य बहुत दूर से दूर की वस्तु को अपने समीप भान करने लग जाता है और आत्मप्रेमरूपी खुर्दबीन से हर एक छोटी से छोटी 'जान' में बड़ापन जानता है उसे प्रतीत हो रही होती है। ज्ञान और उपासना से भान किए हुए उपयोगी पदार्थ की प्राप्ति कर्म से होती है। मनुष्य को ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों की आवश्यकता है।

३–५० बजे बाद दोपहर

अदीनता और आयु का गुर

१. हम अदीन कैसे बनें ? शरीर रोग से दीन बनता है। मन लोभ आदि वासनाओं से दीन बनता है। आत्मा अविद्या से दीन बनती है। व्यायाम, प्राणायाम, वासनायाम से हम अदीन बन सकते हैं।

सादगी सरलता ही अदीनता का गुर है

२. हम कैसे सौ वर्ष देखें ? कैसे जीवें, सुनें, बोलें ? "तत् चक्षु" बन जावें। और "देवहितम्" बन जावें। शुक्र के स्वामी हों। अर्थात् हम प्रभु के चक्षु बन जावें।

(क) हम सदा भान करें कि हम उस प्रभु सर्वव्यापक की चक्षु की देखभाल में हैं।

(ख) हम स्वयं उस प्रभु के अमृत पुत्र होकर उसके चक्षु बन जावें। सब संसार को जिसे प्रभु देखता है, हम वैसे देखने लग जावें।

(ग) देव बनकर सर्व संसार के हम हितकारी हो जावें अथवा हम प्रभु के प्यारे देवों, विधाता, माता, पिता, आचार्य, गुरुजन, बुजुर्ग, अतिथि, महात्मा जो देव संज्ञा में आते हैं उनका हित करें। कदापि उनका निरादार न करें।

(घ) हम वीर्यवान् हों, शुक्र से हमारे शरीर में तेज और बल हो। सूर्य की भांति, आदित्य की भांति हम आदित्य ब्रह्मचारी हों।

शारीरिक, मानसिंह तथा आत्मिक-सौंदर्य

(३) सुन्दरता प्रभु की महान् देन है।

(क) शरीर की सुन्दरता पर चमार मोहित होते हैं।

(ख) मन की सुन्दरता पर देवता मोहित होते हैं।

(ग) आत्मा की सुन्दरता पर परमात्मा मोहित होते हैं।

शरीर की सुन्दरता चमड़े की होती है। मन की सुन्दरता सदाचार की होती है। आत्मा की सुन्दरता भगवान् की भक्ति (तप) और ज्ञान (विद्या) की होती है।

❖ ❖ ❖

तिथि १—२—३६, ४ बजे सायं शनिवार

बे रंज, गंज, मुयस्सर न मे शवद

१ वेद भगवान् कहता है—'परमात्मा बिना थकावट के मित्र नहीं बनते।' परमात्मा की मित्रता में आनन्द, राहत प्राप्त होती है, शांति मिलती है।

शरीर थकता है व्यवहार खूब करने से। दिमाग थकता है सोचने से विचारने से। इनको भी थकने पर

गहरी नींद मिलकर शान्ति मिलती है परन्तु मन कभी व्यवहार से, संकल्प से, विचारों के विकल्पों (खियाली पुलाव) से, नहीं थकता। यह थकता है प्रभु भक्ति से। जब इसे प्रभु भक्ति से खूब थका दिया जावे तो इसे खूब आनन्द आवेगा।

(२) मनुष्य के पास जितना स्थान है, जितना सामर्थ्य है, उतना ही आनन्द उसमें समा सकता है, अधिक नहीं। मनुष्य अल्प है थोड़े ही आनन्द से तृप्त होजाता है।

समाप्त

ओंकार प्रभु तेरा नाम, गुण गावे संसार तमाम,
प्राणस्वरूप प्राणों से प्यारा, दूर दुःखों को करनेवाला।
सुखस्वरूप सुखों के दाता, अन्त न कोई तिहारा पाता।
सारे जग को पैदा करता, सबसे उत्तम पाप का हर्ता।
हे ईश्वर हम तुझको ध्यावें, पाम कर्म के पास न जावें।
बुद्धि करो हमारी उज्ज्वल, जीवन हो हमारा निर्मल।

प्रभु प्रेम

हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन,
उसे कोई कलेश लगा न रहा।
जब ज्ञान की गंगा में नहाया
तो मन में मैल जरा न रहा।

परमात्मा को जब आत्मा में,
लिया देख ज्ञान की आंखों से।
प्रकाश हुआ मन में उसके,
कोई उससे भेद छुपा न रहा।
पुरुषार्थ ही इस दुनियां में,
हर कामना पूरी करता है।
मनचाहा सुख उसने पाया,
जो आलसी बनके पड़ा न रहा।
दुःखदायक हैं सब शत्रु हैं,
ये विषय हैं जितने दुनिया के।
वही पार हुआ भवसागर से,
जो जाल में इनके फंसा न रहा।
यहां वेदविरुद्ध जब मत फैले,
पत्थर की पूजा जारी हुई।
जब वेद की विद्या लोप हुई,
तो ज्ञान का पांव जमा न रहा।
यहां बड़े–बड़े महाराज हुए,
बलवान् हुए विद्वान् हुए,
पर मौत के पञ्जे से केवल,
कोई रचना में आके बचा न रहा।
ओ३म् शम्।

❖ ❖ ❖

ओ३म्
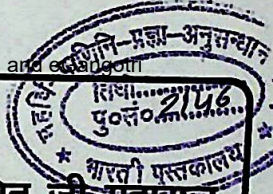
पूज्य गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा लिखित पुस्तकों की सूची

पुस्तक	मूल्य
गायत्री	25.00
दृष्टान्त मुक्तावली	25.00
पृथिवी का स्वर्ग	10.00
पथ–प्रदर्शक	5.50
चमकते अंगारे	4.00
जीवन सुधार	6.00
मनोबल	16.00
जीवन निर्माण	12.00
जीवन यज्ञ	7.00
सौम्य सन्त की प्रार्थनाएं	10.00
गायत्री कुसुमाञ्जलि	2.00
बिखरे सुमन	5.00
साधना प्रचार	5.00
अमृत के तीन घूंट	3.00
आदर्श जीवन	5.00
उत्तम जीवन	0.40
आत्म चरित्र	9.50
अध्यात्म सुधा भाग चार	25.00
कर्म भोग चक्र	26.00
गृहस्थ सुधार	24.00
प्रभु का स्वरूप	16.00
यज्ञ रहस्य	26.00
सन्ध्या सोपान	20.00
मन्त्र योग भाग 1 और 2	25.00
मन्त्र योग भाग 3 और 4	24.00
गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	12.00
वर घर की खोज व योग युक्ति	6.00
विचार विचित्र	6.00
सेवाधर्म	6.00
स्वप्न गुरु तथा देवों का शाप	4.00
निरकार साकार पूजा	3.00
एक अद्भुत किरण	4.00
निर्गुण सगुण उपासना	8.00
जीवन गाथा	5.00
दुर्लभ वस्तु	2.00
भागवान् गृहस्थी	3.00
संभलो	3.00
हवन मन्त्र	3.00
डरो वह बड़ा जबरदस्त है	6.00
रहस्य की बातें	20.00
सामवेद	50.00
यजुर्वेद	60.00

आर्यसमाज के नियम

१. सब नित्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।